RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : KANPUR HO/002/2025-27
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

अक्टूबर-2024 | वर्ष - 16 | अंक : 09 | मूल्य : 5/-

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (सहा.अभि. जलकल विभाग), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश :
सुनील कुमार, ढेलवा, गाजीपुर (उ.प्र.), मो.: 9935363730, 9170836363
योगेन्द्र कुमार (ब्यूरो चीफ चित्रकूट मण्डल)
मो.: 8299162841
हमीरपुर ब्यूरो प्रमुख -
रघुवर प्रसाद, मो.: 9793739030
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख लखनऊ मण्डल :
राजकुमार, उन्नाव
मो.: 9889273743, 9392660070
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.-रामटौरिया, जिला-छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य : ब्यूरो प्रमुख
रमा गजभिये, मो.: 7828273934
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001,
मो. : 09887512360, 0144-3201516
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें -
भारतीय स्टेट बैंक
पी.पी.एन. मार्केट, कानपुर
खाता सं.-33496621020
IFSC CODE-SBIN0001784

भगवान बुद्ध के धर्म के बारे में विविध मत

दूसरों ने उनके धर्म को किस प्रकार समझा?

1. ''भगवान बुद्ध की यथार्थ शिक्षायें कौन सी हैं?''
2. यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर बुद्ध के कोई दो अनुयायी अथवा बुद्ध-धर्म के कोई दो विद्यार्थी एकमत नहीं प्रतीत होते।
3. कुछ के लिये 'समाधि' ही उनकी खास शिक्षा है।
4. कुछ के लिये 'विपश्यना' ही है।
5. कुछ के लिये बुद्ध-धर्म चन्द विशेष रूप से दीक्षित लोगों का धर्म है। कुछ के लिये यह बहुत लोगों का धर्म है।
6. कुछ के लिये इसमें शुष्क दार्शनिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं।
7. कुछ के लिये यह केवल रहस्यवाद है।
8. कुछ के लिये यह संसार से स्वार्थ-पूर्ण पलायन है।
9. कुछ के लिये यह हृदय की प्रत्येक छोटी-बड़ी भावनाओं को दफना देने का व्यवस्थित शास्त्र है।
10. बुद्ध-धर्म के सम्बन्ध में और भी नाना मतों का संग्रह किया जा सकता है।
11. इन मतों का परस्पर विरोध आश्चर्यजनक है।
12. इनमें से कुछ मत ऐसे लोगों के हैं जिनके मन में किसी खास एक बात के लिये विशेष आकर्षण है। ऐसे ही लोगों में से कुछ समझते हैं कि बुद्ध-धर्म का सार, समाधि या विपश्यना में अथवा चन्द दीक्षित लोगों का धर्म होने में
हैं।
13. कुछ दूसरे मतों का कारण यह है कि बुद्ध-धर्म के बारे में लिखने वाले अनेक लोग प्राचीन भारतीय इतिहास के पण्डित है। उनका बौद्ध-धर्म का अध्ययन आकस्मिक है और इतिहास से सम्पर्क रहने के ही कारण है।
14. उनमें से कुछ बुद्ध-धर्म के विद्यार्थी हैं ही नहीं।
15. वेनृवंश-शास्त्र के विद्यार्थी भी नहीं, वह शास्त्र जो धर्म की उत्पत्ति और विकास से भी सम्बद्ध है।
16. प्रश्न पैदा होता है कि क्या भगवान बुद्ध का कोई सामाजिक सन्देश था या नहीं?
17. जब उत्तर देने के लिये जोर डाला जाता है तो बुद्ध-धर्म के पण्डित प्रायः दो बातों पर विशेष बल देते हैं। वे कहते हैं -
18. भगवान बुद्ध ने अहिंसा की शिक्षा दी थी।
19. भगवान बुद्ध ने शान्ति दी थी।
20. प्रश्न है- ''क्या बुद्ध ने कोई दूसरा सामाजिक संदेश दिया?
21. ''क्या बुद्ध ने 'न्याय' की शिक्षा दी?''
22. ''क्या बुद्ध ने 'मैत्री' की शिक्षा दी?''
23. ''क्या बुद्ध ने 'स्वतन्त्रता' की शिक्षा दी?''
24. ''क्या बुद्ध ने 'समानता' की शिक्षा दी?''
25. ''क्या बुद्ध ने 'भ्रातृभाव' की शिक्षा दी?''
26. ''क्या बुद्ध कार्ल मार्क्स के मुकाबले पर खड़े हो सकते हैं?''
27. ''बुद्ध धर्म का विचार करते समय इन प्रश्नों को प्रायः
कभी उठाया ही नहीं जाता।
28. मेरा उत्तर है कि भगवान बुद्ध का एक सामाजिक संदेश है। उनका सामाजिक संदेश इन सब प्रश्नों का उत्तर है। लेकिन उन सब प्रश्नों के उत्तरों को आधुनिक लेखकों ने दफना दिया है।

भगवान बुद्ध का अपना वर्गीकरण

1. भगवान बुद्ध ने धर्म का अपने ढंग का वर्गीकरण किया है।
2. पहला वर्ग ''धर्म'' है।
3. उन्होंने एक दूसरा वर्ग माना है, जो यद्यपि 'धर्म' शब्द के अन्तर्गत ही ग्रहण किया जाता है, किन्तु जो वास्तव में 'अधर्म' है।
4. उन्होंने एक तीसरा वर्ग माना है जिसे उन्होंने 'सद्धर्म' कहा है।
5. तीसरा वर्ग 'धर्म के दर्शन' के लिये है।
6. भगवान बुद्ध के धर्म को समझने के लिये आवश्यक है कि तीनों वर्गों को भली प्रकार समझा जाए-धर्म को, अधर्म को तथा सद्धर्म को।

साभार :
भगवान बुद्ध और उनका धर्म
पेज संख्या 175 से 176 तक
डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

हिंदू और सार्वजनिक विवेक का अभाव

जिन परिस्थितियों में हिंदुओं ने अस्पृश्यों के विरूद्ध हिंसा तक का सहारा लिया है, वे परिस्थितियां सभी को समान स्वतंत्रता की चाहत की रही हैं। अगर अस्पृश्य अपना जुलूस निकालना चाहते हैं, तब उन्हें हिंदुओं के द्वारा जुलूस निकालने पर कोई एतराज नहीं होता। अगर अस्पृश्य सोने और चांदी के जेवर पहनना चाहते हैं, तब हिंदुओं को भी वैसा ही अधिकार, इस पर वे कोई एतराज नहीं करते। अगर अस्पृश्य अपने बच्चों को स्कूलों में दाखिला दिलाना चाहते हैं, तब वे हिंदुओं के बच्चों को शिक्षा की पूरी आजादी होने का विरोध नहीं करते। अगर अस्पृश्य कुएं से पानी भरना चाहते हैं, तब हिंदुओ के द्वारा पानी भरने के अपने अधिकार का उपयोग किए जाने पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती। इन सबका कोई अंत नहीं। यहां इन्हें गिनाने की जरूरत नहीं है। सीधी–सी बात है। वह यह है कि अस्पृश्य जो स्वतंत्रता चाहते हैं, वह सिर्फ अपने लिए नहीं है, और वह हिंदुओं के समान स्वतंत्रता चाहते हैं, वह सिर्फ अपने लिए नहीं है, और वह हिंदुओं के समान स्वतंत्रता के अधिकार से भिन्न नहीं है। तब हिंदू ऐसी इच्छाओं को जो किसी को हानि नहीं पहुंचाती और जो पूर्णतः न्यायसंगत है, अमल में आने देने के लिए हिंसा पर क्यों उतर आते हैं? हिंदू अपने अन्याय को न्यायसंगत क्यों मानता है? कौन यह इंकार कर सकता है कि अस्पृश्यों के साथ हिंदुओं के व्यवहार में जो कुछ अपकर्म होता है, उसे सामाजिक अपराध के अतिरिक्त और कोई संज्ञा नहीं दी जा सकती। यह केवल अन्याय नहीं है, यह केवल तिरस्कार नहीं है। यह मनुष्य की मनुष्य के प्रति घोर अमानवीयता है। अगर किसी डाक्टर के द्वारा मरीज का इसलिए इलाज न करना कि मरीज अस्पृश्य है, अगर हिंदुओं के एक गिरोह द्वारा अस्पृश्यों के घरों को जला डालना, अगर अस्पृश्यों के कुओं में मैला डलवा देना अमानवीय कार्य नहीं है, तब मैं सोचता हूं कि यह और क्या है? प्रश्न यह है कि हिंदुओं में विवेक क्यों नहीं है?

इन प्रश्नों का एक ही उत्तर है। अन्य देशों में वर्ग आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से आधार पर बने। गुलामों और खेतिहर गुलामों की धर्म में कोई अवस्था नहीं थी। इसी अपेक्षा अस्पृश्यता मुख्यतः धर्म पर आधारित है, हालांकि इससे हिंदुओं को आर्थिक लाभ होता है। जब कभी आर्थिक या सामाजिक हित की बात होती है, तब कुछ भी पवित्र या अपवित्र नहीं होता। ये हित समय और परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। गुलाम–प्रथा और खेतिहर गुलाम–प्रथा क्यों कर मिट गई और अस्पृश्यता क्यों कर नहीं मिटी, इसका यही स्पष्ट कारण है। दो अन्य प्रश्नों का भी यही उत्तर है। अगर हिंदू अस्पृश्यता का पालन करता है, तो यह इसलिए कि उसका धर्म उसे ऐसा करने का आदेश देता है। अगर उसकी इस स्थापित व्यवस्था के विरूद्ध उठने वाले अस्पृश्यों का वह नृशंसतापूर्वक और अन्यायपूर्वक दमन करता है, तब उसका कारण उसका अपना धर्म है, जो उसे केवल इस बात की ही शिक्षा नहीं देता कि वह स्थापित व्यवस्था दैवी विधान है और इसलिए पावन है, बल्कि उस पर यह सुनिश्चित करने का कर्तव्य भी आरोपित करता है कि उसे इस स्थापित व्यवस्था को हर संभव उपाय से कायम रखना है। अगर वह मानवता की पुकार को नहीं सुनता, तब उसका कारण यह है उसका धर्म अस्पृश्यों को मानव समझने के लिए उसे बाध्य नहीं करता। अगर अस्पृश्यों को मारने–पीटने, उनके घरों को लूटने तथा जलाने और उन पर अन्य अत्याचार करते समय उसे अपने विवेक का कुछ भी ध्यान नहीं रहता, तब उसका कारण यह है कि उसका धर्म उसे इस बात की शिक्षा देता है कि इस सामाजिक व्यवस्था की सुरक्षा करने के लिए किया गया कोई भी कर्म पाप–कर्म नहीं है।

अधिकांश हिंदू कह सकते हैं कि ऐसा कहना तो उनके धर्म की हंसी उड़ाना है। इस आरोप का उत्तर देने का सबसे अच्छा उपाय हिंदू समाज के निर्माता मनु के कथन, जो उसके ग्रंथ 'मनुस्मृति' के अध्यायों व श्लोकों में दिए गए हैं उद्धत करना है। मैंने जो कुछ कहा है, उसका अगर कोई खंडन करता है तो उसे अस्पृश्यता के विषय में मनु की निम्नलिखित व्यवस्थाओं को पढ़ना चाहिए :

1. इस पृथ्वी पर जो भी जातियां उस समुदाय से अलग रखी गई हैं जो मुख, बाहु, जंघा और (ब्राह्मण के) पैरों से जन्मी हैं, वे दस्यु कहलाती हैं, जो चाहे म्लेच्छों (बर्बर जातियों) की भाषा बोलती हों या आर्यों की – (मनु., 10.45.)

2. ये जातियां प्रसिद्ध वृक्षों और श्मशान भूमि के निकट या पर्वतों पर और झाड़ियों के पास निवास करें, (कुछ चिह्नों से) जानी जाएं और अपने विशिष्ट व्यवसाय से जीविकोपार्जन करें – (वही, 10.50.)

3. लेकिन चांडालों और श्वपचों के घर गांव के बाहर होंगे और उन्हें अपपात्र बनाया जाना चाहिए और उनकी संपत्ति कुत्ते और गधे होंगे – (वही, 10.51.)

4. मृतक के वस्त्र इनके वस्त्र होंगे, वे टूटे–फूटे बर्तनों में भोजन करेंगे, उनके गहने काले लोहे के होंगे और वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर आते–जाते रहेंगे –(वही, 10.52)

5. धर्म का आचरण करने वाला व्यक्ति इन लोगों के साथ व्यवहार न रखे और उनके व्यवहार उनके अपने ही समुदाय में होंगे और विवाह समान व्यक्तियों के साथ ही होंगे – (वही, 10.53.)

6. उनका भोजन (आर्य दाता के अतिरिक्त) अन्य के द्वारा टूटे–फूटे बर्तन में दिया गया होगा, रात्रि के समय वे गांवों और नगरों के आस–पास नहीं जाएंगे – (वही, 10. 54)

7. दिन में वे, राजा के द्वारा चिह्नों से अंकित हो जिससे वे अलग–अलग पहचाने जा सकें, अपने–अपने काम के लिए जाएंगे और उन व्यक्तियों के शवों को ले जाएंगे जिनके कोई सगे–संबंधी नहीं हैं, यही शास्त्र–सम्मत मर्यादा है – (वही, 10.55.)

8. वे राजा का आदेश होने पर अपराधियों का वध कानून में विहित विधि के अनुसार हमेशा करेंगे और वे अपने लिए (ऐसे) अपराधियों के वस्त्र, शैया और आभूषण प्राप्त करेंगे – (वही, 10.56)

9. जो भी व्यक्ति निम्नतम जातियों की किसी स्त्री के साथ संबंध रखता है, उसका वध कर दिया जाएगा– (विष्ण, 5.43.)

10. अगर कोई व्यक्ति जिसको (चांडाल या किसी अन्य निम्न जाति का होने का कारण) स्पर्श नहीं किया जाना चाहिए, जान–बूझकर अपने स्पर्श से ऐसे व्यक्ति को अपवित्र करता है, जो द्विज जाति का होने के कारण (केवल द्विज व्यक्ति द्वारा ही) छुआ जा सकता है, तो उसका वध कर दिया जाएगा – (विष्णु, 5.10.)

क्या कोई व्यक्ति मनु की इन व्यवस्थाओं को पढ़कर यह इंकार कर सकता है कि हिंदुओं में अस्पृश्यता की भावना को चिरस्थाई बनाने और अस्पृश्यों के प्रति उनके मन में न्यायरहितता और विवेकशून्यता उत्पन्न करने के लिए धर्म एकमात्र कारण नहीं है? निश्चय ही, अगर इन दस व्यवस्थाओं के साथ अपकर्मों को जोड़ दिया जाए, जिनका ब्यौरा इस पुस्तक के आरंभिक अध्यायों में दिया जा चुका है, तब यह स्पष्ट हो जाएगा कि अस्पृश्यों के हिंदू जो बर्ताव करते हैं, वह ऐसा कर मनु की व्यवस्थाओं का ही पालन करते हैं। अगर हिंदू किसी अस्पृश्य का स्पर्श नहीं करता है और अगर वह किसी अस्पृश्य द्वारा स्पर्श कर लिए जाने पर इसे उसका अपराध मानता है, तब वह ऐसा उपर्युक्त पांचवी और दसवीं व्यवस्था के कारण करता है। अगर हिंदू अस्पृश्यों के पृथक रहने पर जोर देता है, तब वह ऐसा तीसरी व्यवस्था के कारण करता है। अगर हिंदू अस्पृश्य को साफ कपड़े और सोने के जेवर नहीं पहनने देता, तब वह आठवीं व्यवस्था का ही तो पालन करता है। अगर हिंदू किसी अस्पृश्य द्वारा संपत्ति और धन अर्जित किया जाना सहन नहीं कर सकता, तब वह तीसरी व्यवस्था का पालन करता है।

वस्तुतः इस बारे में और अधिक तूल देने का कोई आवश्यकता नहीं। यह निर्विवाद है कि अस्पृश्यों के दुर्भाग्य का मुख्य कारण हिंदू धर्म और उसकी शिक्षाएं हैं। जहां तक गुलाम–प्रथा का संबंध गैर–ईसाई धर्म व ईसाई धर्म से और अस्पृश्यता का संबंध हिंदू धर्म से है, इन दोनों के बीच तुलना करने से यह पता चल जाएगा कि इन दोनों धर्मों का मानव संस्थाओं पर कितना भिन्न–भिन्न प्रभाव पड़ा है। अगर पहले धर्म से मानव समाज का उत्थान हुआ है, तो हिंदू धर्म के कारण मानव समाज का कितना अधिक पतन हुआ है। जो लोग अक्सर गुलाम–प्रथा के साथ अस्पृश्यता की तुलना करते हैं, वे यह नहीं सोचते कि वे विरोधी स्थितियों की परस्पर तुलना कर रहे हैं। कानून के अनुसार गुलाम स्वतंत्र व्यक्ति नहीं था, तो भी सामाजिक दृष्टि से उसे वह सारी स्वतंत्रता प्राप्त थी, जो उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक थी। इसकी अपेक्षा एक अस्पृश्य व्यक्ति कानून के अनुसार स्वतंत्र व्यक्ति तो है, फिर भी सामाजिक तौर पर उसे अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए कोई भी स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है।

यह निश्चय ही एक ऐसी विरोधपूर्ण स्थिति है, जो साफ नजर आती है। इस विरोधपूर्ण स्थिति का क्या कारण है? इसका एक ही कारण है, और वह यह है कि वहां धर्म गुलामों के पक्ष में था, जब कि यहां यह अस्पृश्यों के विपक्ष में है। रोम के कानून में यह घोषित किया गया कि गुलाम की कोई व्यक्तिगत सत्ता नहीं है। लेकिन रोम के धर्म ने इस सिद्धांत को कभी भी स्वीकार नहीं किया और उस सिद्धांत को किसी भी हालत में सामाजिक क्षेत्र में लागू करना स्वीकार नहीं किया। उसने गुलाम को मित्र होने योग्य समझकर उसके साथ मानवोचित व्यवहार किया। हिंदू कानून में यह घोषित किया गया कि स्पृश्य का कोई व्यक्तित्व नहीं है। गैर–ईसाई धर्म के विपरीत, हिंदू धर्म ने इस सिद्धांत को स्वीकार ही नहीं किया, बल्कि उसे सामाजिक क्षेत्र में लागू भी कर दिया। चूंकि हिंदू कानून ने अस्पृश्य का कोई व्यक्तित्व स्वीकार नहीं किया, इसलिए हिंदू धर्म ने उसे मानव नहीं माना कि वह मित्रता के योग्य हो सकता।

इसका कोई प्रश्न ही नहीं होता कि कानूनी तौर पर निचला दर्जा दिए जाने पर रोम के धर्म ने गुलाम की सामाजिक अवनति से रक्षा नहीं की। उसने इस अवनति से उसकी रक्षा तीन भिन्न–भिन्न रीतियों से की। रोम के धर्म ने उसकी रक्षा जिन तीन रीतियों से की, उनमे एक तो यह थी कि रोम के धर्म ने अपने यहां गुलाम को पवित्रतम पद पर प्रतिष्ठित होने के लिए अपने सभी दरवाजे खुले

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

रखे। जैसा कि कहा गया है :

रोम का धर्म कभी भी गुलामों के विरूद्ध नहीं रहा। उसने अपने पूजास्थलों के द्वार उनके लिए कभी भी बंद नहीं किए। उसने उन्हें अपने उत्सवों में भाग लेने से कभी नहीं रोका। यदि कुछ अनुष्ठानों में सम्मिलित होने पर गुलामों पर प्रतिबंध था, तो वैसा ही प्रतिबंध मुक्त गुलामों (पुरूष और स्त्रियों) पर भी था– पुरूषों पर बोना दिया, वेस्ता और केरस अनुष्ठान में सम्मिलित होने पर प्रतिबंध था, तो एरा मैक्सिमा में हरक्यूलिस नामक अनुष्ठान स्त्रियों के लिए वर्जित था। .... जब रोम के निवासी अपने प्राचीन देवताओं से अपने लिए आशीर्वाद मांगा करते थे, तब वे अपने गुलामों की भी अनौपचारिक रूप से अपने परिवार के अंग के रूप में सम्मिलित कर लेते थे और वे अपने को उस परिवार के देवी–देवताओं के संरक्षण में आया समझते थे। ... आगस्टस ने यह आदेश दिया कि मुक्त की हुई गुलाम स्त्रियों को बेस्ता में पादरिन बनने योग्य समझा जाना चाहिए। कानून इस बात पर बल देता था कि गुलाम की कब्र को पवित्र स्थल माना जाए और रोम की धार्मिक कथाओं में उसकी आत्मा के लिए अलग से किसी विशेष स्वर्ग या नरक का प्रावधान नहीं किया गया। जुनेनल यह स्वीकार करता है कि गुलाम का शरीर और उसकी आत्मा उन्हीं तत्वों से बनी है, जिनसे उसके मालिक का शरीर और आत्मा बनी है।

रोम के धर्म ने गुलामों की जिस दूसरी रीति से सहायता की, वह यह कि उसने गुलामों को नगर प्रमुख (सिटी प्रीफेक्ट) के समक्ष अपनी शिकायत दर्ज करने के योग्य समझा, जिसका काम गुलामों पर उनके मालिकों के द्वारा किए जाने वाले अत्याचार के मामलों की सुनवाई करना हो गया। वह धर्मनिरपेक्ष उपाय था। एक और बढ़िया उपचार रोम के धर्म ने यह किया कि गुलाम पूजा–गृह में जाकर यह निवेदन कर सकता था कि उसे किसी अधिक दयालु मालिक के हाथ बेच दिया जाए।

रोम के धर्म ने जिस तीसरी रीति से गुलामों की रक्षा की, वह यह थी कि उसने रोग के कानून को उसके मानव होने के औचित्य को नष्ट करने नहीं दिया। उसने उसे मानव समाज और मानव मैत्री के अयोग्य नहीं घोषित किया। रोम के गुलामो के लिए यह एक बड़ी नजात थी। कल्पना कीजिए कि यदि रोम का समाज गुलामों के हाथ से सब्जी, दूध और मक्खन न खरीदता, उनके हाथ का छुआ पानी या शराब न पीता, कल्पना कीजिए कि यदि रोम का समाज गुलामों से छूतछात बरतता, उन्हें अपने घरों में न घुसने देता, वाहनों में उन्हें साथ न बैठाता आदि, तो क्या उनके मालिकों के लिए यह संभव होता कि वे उन्हें अर्ध जंगली स्थिति से ऊपर उठाकर सभ्य बना लेते। स्पष्टतः कदापि नहीं। कारण यही था कि गुलाम को अस्पृश्य बनाकर नहीं रखा गया, इसलिए मालिक ने प्रशिक्षित करने उसे ऊंचा उठाया। हम फिर उसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, अर्थात गुलाम को इसलिए बचाया जा सका क्योंकि समाज द्वारा उसके व्यक्तित्व को मान्यता दी गई, और अस्पृश्य की बरबादी का कारण यही था कि हिंदू समाज ने उसके व्यक्तित्व को मान्यता नहीं दी। उसे गंदा और गलीज माना, जिसके कारण वह बराबर में बिठाए जाने या व्यवहार रखे जाने योग्य नहीं रहा।

कोई सामाजिक या धार्मिक खाई नहीं थी, जो गुलाम को शेष समाज से अलग रखती। बाहर से देखने–सुनने में वह मुक्त गुलाम (फ्रीमैन) से भिन्न नहीं था। रंग या कपड़ों से उसकी स्थिति का पता नहीं चलता था, वह मुक्त गुलाम की तरह सभी खेल–तमाशों को देख सकता था, वह नगर के जन–जीवन में भाग ले सकता था और राज्य की नौकरियों में नियुक्त हो सकता था, वह व्यापार और वाणिज्य में भाग ले सकता था, जैसे कि अन्य मुक्त गुलाम भाग लेते थे। अक्सर देखा गया कि व्यक्ति के लिए बाहर–बाहर दिखने वाली प्रातिभासिक समानता का महत्व उन अधिकारों से अधिक होता है, जो उसे कानून के तहत प्राप्त होते हैं। गुलाम और मुक्त गुलाम के बीच सामाजिक सीमा अक्सर मिट जाती होगी। गुलाम और मुक्त गुलाम तथा मुक्त गुलाम और गुलाम के बीच विवाह–संबंध आम बात थी। गुलाम होने की स्थिति उस व्यक्ति के लिए कलंक नहीं रह गई, जो गुलाम होता था। वह स्पृश्य था और आदरणीय भी। यह सब गुलामों के प्रति रोम के धर्म के दृष्टिकोण के कारण हुआ।

गुलाम–प्रथा के संबंध में ईसाई धर्म के रवैए के विषय में विस्तार से लिखने के लिए यहां स्थान नहीं है। परंतु वह गैर–ईसाई धर्म से भिन्न था। बहुत से लोगों को इस बात का पता नहीं है कि अमरीका में गुलाम–प्रथा के दिनों में ईसाई पादरी किसी गुलाम को ईसाई धर्म में दीक्षित करने के लिए तैयार नहीं होते थे, क्योंकि उनका विचार था कि यदि गुलामों को दीक्षित किया गया और वे गुलाम ही बने रहे, तो इससे ईसाई धर्म का स्तर गिर जाएगा। उनका विचार था कि कोई ईसाई दूसरे ईसाई को गुलाम बनाकर नहीं रख सकता। उसे दूसरे ईसाई को बराबरी का दर्जा देना पड़ जाएगा।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कानून और धर्म, दो ऐसे तत्व है जो व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। कभी–कभी तो उनका चोली–दामन का साथ होता है और कभी–कभी वे एक–दूसरे की खामियों को सुधारने का काम भी करते हैं। इन दोनों तत्वों में कानून का संबंध व्यक्ति से है, जबकि धर्म निर्वैयक्तिक होता है। कानून क्योंकि व्यक्ति पर आधारित है, इसलिए वह अन्याय और असमानता का कारण हो सकता है। परंतु धर्म के साथ यह बात नहीं है, इसलिए वह निष्पक्ष रह सकता है। यदि धर्म निष्पक्ष होगा, तो वह कानूनी असमानता को दूर करने की क्षमता रखता है रोम में गुलामों के संबंध में ऐसा ही हुआ। इसी कारण धर्म के विषय में यह कहा जाता है कि मनुष्य को उदात्त बनाने के लिए है, न कि उसे अवनत करने के लिए। हिंदू धर्म एक अपवान है। इसने अस्पृश्यों को अधः प्राणी बना दिया। इसने हिंदू को अमानुषिक बना दिया। इस अधः प्राणी की स्थापित व्यवस्था से और न अमानुषिकता से ही त्राण पाने का कोई उपाय दीखता है।

साभार :
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–9
पेज संख्या 141 से 148 तक
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

बुद्ध ने अपने या अपने शासन के लिये किसी प्रकार की 'औरूषेयता' का दावा नहीं किया। उनका धर्म मनुष्यों के लिये एक मनुष्य द्वारा आविष्कृत धर्म था। यह 'अपौरूषेय' नहीं था।

1. प्रत्येक धर्म के संस्थापक ने या तो अपने को 'ईश्वरीय' कहा, या अपने 'धर्म' को।
2. हजरत मूसा ने यद्यपि अपने को 'ईश्वरीय' नहीं कहा, किन्तु अपनी शिक्षाओं को 'ईश्वरीय' कहा है। उसने अपने अनुयायियों को कहा कि यदि उन्हें 'क्षीर और मधु' के मुल्क में पहुंचना है तो उन्हें उन शिक्षाओं को स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि वे 'ईश्वरीय' हैं।
3. ईसा ने अपने 'ईश्वरीय' होने का दावा किया। उसने दावा किया कि वह 'ईश्वर–पुत्र' था। स्वाभाविक तौर पर उसकी शिक्षायें भी 'ईश्वरीय8 हो गई।
4. कृष्ण ने तो अपने आपको 'ईश्वर' ही कहा और अपनी शिक्षाओं को 'भगवान का वचन' है।
5. तथागत ने न अपने लिये और न अपने धर्म–शासन के लिए कोई ऐसा दावा किया।
6. उनका दावा इतना ही था कि वे भी बहुत से मनुष्यों में से एक हैं और उनका संदेश एक आदमी द्वारा दूसरे को दिया गया सन्देश है।
7. उन्होंने कभी यह भी दावा नहीं किया कि उनकी कोई गलत बात हो ही नहीं सकती।
8. उनका दावा इतना ही था कि जहाँ तक उन्होंने समझा है उनका पथ मुक्ति का सत्य–मार्ग है।
9. क्योंकि इसका आधार संसार भर के मनुष्यों के जीवन का व्यापक अनुभव है।
10. उन्होंने कहा कि हर किसी को इस बात की स्वतन्त्रता है कि वह इसके बारे में प्रश्न पूछे, परीक्षण करे और देखे कि यह सन्मार्ग है या नहीं?
11. धर्म के किसी भी दूसरे संस्थापक ने अपने धर्म को इस प्रकार परीक्षण की कसौटी पर कसने का खुला चैलेंज नहीं दिया।

साभार :
भगवान बुद्ध और उनका धर्म
पेज संख्या 173 से 174 तक
डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

विदेश के तदनुरूप उदाहरण

I- रोम में गुलाम–प्रथा II- इंग्लैंड में अर्ध–गुलाम
III- यहूदी और हीनता IV- नीग्रो और गुलाम–प्रथा

सामाजिक असमानता केवल हिंदू समाज में ही नहीं है। यह अन्य देशों में भी रही और समाज के उच्च और निम्न, मुक्त और अमुक्त, पूजनीय और निंदनीय वर्गों में बंटने का कारण यही रही है। अन्य प्राचीन और आधुनिक देशों में अमुक्त और निंदनीय वर्गों की स्थिति और उनकी हैसियत के साथ भारत के अस्पृश्यों की स्थिति और उनकी हैसियत की तुलना करने पर बहुत–सी बातों का पता चलेगा। इनके अंतर और समानताओं को भली–भांति समझने के लिए इन एक जैसे उदाहरणों के इतिहास की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर लेना, उनकी तुलना करने से पहले अत्यंत आवश्यक हैं। विश्व के सभी भागों में इन सभी वर्गों की स्थिति का सर्वेक्षण प्रस्तुत करना संभव नहीं। न यह आवश्यक है। केवल कुछ थोड़े से उदाहरण व्याख्या के रूप में लिए जा सकते हैं।

हिंदुओं और अस्पृश्यों के बीच परस्पर संबंध का अध्ययन करते समय हमारे मन में तीन प्रश्न एकदम उभर कर सामने आते हैं। अस्पृश्यता क्यों कर समाप्त नहीं हुई? अस्पृश्यों पर अन्याय को हिंदू वैध और न्यायपूर्ण क्यों मानते हैं? अस्पृश्यों के साथ अपने व्यवहार में हिंदू अपने विवेक के संकेत का अनुभव क्यो नहीं करते हैं?

I

अस्पृश्यों जैसे निम्न और निर्दलीय वर्ग कभी अन्य समाजों में भी रहे हैं। उदाहरणार्थ, ये कभी प्राचीन रोम में होते थे। प्राचीन रोम में पांच प्रकार के निवासी थे – 1. पैट्रीशियन (कुलीन), 2. प्लेबियन (अकुलीन), 3. क्लायंट (पराधीन), 4. गुलाम, और 5. फ्रीमेन (मुक्त गुलाम)।

पैट्रीशियन लोग शासक वर्ग के होते थे। वे प्रत्येक अर्थ में नागरिक होते थे, शेष सभी हैसियत में नीचे होते थे। प्लेब और क्लायंट वर्ग–युद्ध में नष्ट हो गए। नए लोगों में से जिन लोगों ने पैट्रीशियनों के प्रतिष्ठित परिवारों के प्रमुखों की शरण में रहने की याचना की व उनकी अधीनता स्वीकार कर ली, वे क्लायंट कहलाए। जिन लोगों ने इस प्रकार के व्यक्तिगत सरंक्षण के अधीन रहना स्वीकार नहीं किया और सीधे राज्य का संरक्षण स्वीकार किया, वे शाही गुदस्तादार बन गए। इन लोगों को प्लेबियन कहा जाने लगा। प्लेबियनों को चल और अचल, दोनों प्रकार की संपत्ति रखने का अधिकार था। वे अपनी संपत्ति को रोम के कानून के अधीन हस्तांतरित कर सकते थे और इसके लिए न्यायाधिकरणों की सहायता प्राप्त कर सकते थे। लेकिन उन्हें नगर के प्रशासन में कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था। वह अर्ध–नागरिक होते थे। उन्हें नगर के धार्मिक कार्यकलापों में भाग लेने की अनुमति नहीं थी। पैट्रीशियन और प्लेबियन के बीच विवाह–संबंध होने का तो प्रश्न ही नहीं था। क्लायंट को सहायता और सुरक्षा के लिए अपने पैट्रीशियन संरक्षक पर निर्भर रहना पड़ता था। क्लायंट और उसके बाल–बच्चों के जीवन–निर्वाह के लिए सभी आवश्यकताओ की पूर्ति उसके पैट्रीशियन संरक्षण को करनी पड़ती थी। यह संबंध पीढ़ी दर पीढ़ी का होता था, जो पिता के बाद उसके पुत्र से होता था। क्लायंट को न केवल अपने भरण–पोषण के लिए अपने पैट्रीशियन संरक्षक पर निर्भर रहना होता था, बल्कि उसे अपनी कानूनी सुरक्षा के लिए भी उसी पर निर्भर रहना होता था, बल्कि उसे अपनी कानूनी सुरक्षा के लिए भी उसी पर निर्भर रहना पड़ता था। चूंकि वह नागरिक नहीं होता था, इसलिए उसे कानूनी कार्रवाई करने का अधिकार प्राप्त नहीं था, और उसके कष्ट–निवारण के लिए उसके पैट्रीशियन संरक्षक को उसकी सहायता करनी पड़ती थी और उसके मुकदमेंबाजी में फंस जाने पर उसके बदले न्यायाधिकरण के सामने उपस्थित होना पड़ता था

जहां तक गुलामों का प्रश्न है, उनकी संख्या लाखों में थी। हर अमीर जमींदार के पास सैकड़ों या हजारों की संख्या में गुलाम होते थे जिस किसी के पास थोड़े–बहुत गुलाम न हों, वह निर्धन कहलाता था। गुलाम निजी संपत्ति होते थे। वे कानून की दृष्टि से मनुष्य नहीं थे और इसलिए उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। कुछेक स्वामी ही उन पर दयालु होते थे। आमतौर से उनके साथ अत्यंत निर्दयतापूर्ण व्यवहार होता था। सेनेका का कथन है –'यदि भोजन के समय कोई दास खांस देता या छींक देता या उसके हाथ से चाबी गिर जाती और उसकी आवाज सुनाई पड़ जाती, तो हमें बहुत गुस्सा आ जाता था। ... हम अक्सर उसकी खूब पिटाई करते थे। उसके हाथ–पैर या दांत तोड़ देते थे।' एक अमीर रोमवासी अपने गुलाम को उसकी लापरवाही पर मछलियों के पोखर में धकेल देता था, जिससे लेम्प्रे मछलियां उसे नोच–नोचकर खा लें। जो गुलाम अपने स्वामी को अप्रसन्न कर देता था तो उसे सजा के तौर पर तहखाने में बंद कर दिया जाता था। सारा दिन उन्हें भारी–भारी जंजीरों में बंधे–बंधे काम करना पड़ता था। कई गुलामों को गर्म सलाखों से दाग दिया गया था। रोम के एक लेखक ने एक मिल का वर्णन जहां इन दासों को काम करना पड़ता था, इस शब्दों में किया है

हे भगवान ! ये ठठरियां भी क्या कोई इंसान है? इनकी चमड़ी कोड़ों की मार से उधड़ी पड़ी है। शरीर चिथड़ों में लिपटा हुआ है, सारा शरीर मुड़ गया है, सिर मुंडा हुआ है, पैरों में सांकले पड़ी हुई हैं, आग की गर्मी से शरीर टेढ़ा–मेढ़ा हो गया है, पलकें आग की लपटों से झुलसी हुई है और पूरे शरीर पर भूसी लिपटी हुई है।

किसी समय में अंग्रेजों के समाज में भी सेवक वर्ग हुआ करता था। यह जानने के लिए कि नारमनों की विजय के समय अंग्रेजों के समाज की क्या दशा थी। हमें 'डूम्सडे' पुस्तक के पृष्ठ उलटने होंगे। इस पुस्तक में इंग्लैंड की भूमि–व्यवस्था और विभिन्न प्रकार के किसानों का सामाजिक सर्वेक्षण किया गया है, जैसी कि विजेता विलियम ने 1086 में अपनी विजय के तुरंत बाद यहां स्थापित की थी। इस पुस्तक में उस समय की आबादी के निम्नलिखित वर्ग बताए गए हैं :

कुल 3,37,000 की जनसंख्या में 2,84,000 लोग या तो अमुक्त थे या फिर गुलाम थे।

वह कुछ ऐसा सेवक वर्ग था, जो नस्ल या धर्म पर आधारित नहीं था। लेकिन इतिहास में धर्म और नस्ल के आधार पर बने सेवक वर्ग के कई उदाहरण मिलते हैं। इनमे यहूदी मुख्य थे। ईसाइयों के इस विश्वास के आधार पर कि ईसा की मृत्यु यहूदियों के कारण हुई, यहूदियों को सताया जाता रहा है। मध्य–काल में यूरोप के सभी शहरों में यहूदियों को सीमित क्षेत्र में रहने के लिए मजबूर किया जाता था, और यहूदियों के ये निवास–क्षेत्र 'घेट्टो' कहलाते थे। 1050 में आस्ट्रेलिया में कोएंजा में हुई ईसाइयों की एक महासभा में अधिनियमित किया गया कि 'कोई भी ईसाई किसी मकान में यहूदी और मूर (हब्शी) लोगों के साथ नहीं रहेगा और न उनके साथ भोजन करेगा, और जो कोई इस नियम को तोड़ेगा, वह सात दिन तक प्रायश्चित करेगा। यदि कोई व्यक्ति उच्च पदाधिकारी होकर ऐसा करने से इंकार कर दे तो उसका एक साल तक सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाए। यदि कोई साधारण व्यक्ति यह अपराध करे तो उसे एक सौ कोड़े लगाए जाएं। 1388 में फैलेनशिया में हुई महासभा में एक नियम बनाया गया कि 'ईसाई उन घरों में न रहें, जो यहूदियों के लिए निर्धारित हैं, और जो वहां रह रहे हों, वे प्रमुख चर्च के द्वारा इस आदेश के जारी होने के दो महीने के भीतर वहां से हट जाएं, और यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो उन्हें पादरियों द्वारा प्रताड़ित किया जाए। मध्य–काल में यहूदी इकट्ठे होकर एक जगह स्नान करते थे। स्नान करने से लिए और कोई दूसरा उपाय भी नहीं था। इसका कारण यह था कि ईसाई जिन नदियों में नहाते थे, वहां राज्य की ओर से यहूदियों का नहाना वर्जित था। चौहदवीं शताब्दी में औगर्स के ओर से यहूदियों का नहाना वर्जित था। चौहदवीं शताब्दी में औगर्स के यहूदियों को बहुत कठोर शर्तों पर नगर में फिर से रहने की इजाजत दी गई थी। इन शर्तों में एक शर्त यह थी कि वे माईन नदी में स्नान नहीं कर सकते। राज्य द्वारा यहूदियों पर कुछ कर भी लगाए गए। ये कर तीन प्रकार के थे– 'व्यक्ति कर', व्यक्तिगत लेन–देन और विशेषधिकारों पर विशेष प्रकार का जुर्माना और शुल्क। किस उम्र में यहूदी स्त्री या पुरूष 'व्यक्ति कर' का भुगतान शुरू कर देगा, उसमें बहुत अंतर था, किंतु यह उम्र बहुत कम होती थी। 1273 में इंग्लैंड की तरह स्पेन में भी दस साल की उम्र के यहूदियों को यह कर देना पड़ता था। शांति–काल में यहूदियों के घरो में सिपाहियों को जबरदस्ती रख उनसे धन वसूलना तो आम बात थी। मध्य–काल में जगह–जगह यहूदियों से इस प्रकार धन वसूल करने के असंख्य उदाहरण मिलते हैं। 1215 में पोप इनोसेंट तृतीय ने एक फरमान जारी किया कि ईसाइयो से अलग अपनी पहचान के लिए यहूदी बाहर अपने कपड़ों के ऊपर एक बिल्ला लगाया करेंगे। लेटरनन परिषद् ने स्पष्ट रूप से इस बात पर बल दिया कि यहूदी बिल्ला लगाएंगे, किंतु उसका विवरण नहीं बताया गया। उसने यह बता स्थानीय गवर्नरों और सरकारों पर छोड़ दी कि वे निश्चित करें कि उस अपमानजनक बिल्ले की छाप, रंग और आकार क्या होगा। प्रत्येक गवर्नर और सरकार ने अपनी मर्जी से बिल्लों का रंग और आकार निश्चित कर दिया। उन बिल्लों के रंग और आकार इतने बदले कि वे निरर्थक हो गए और यहूदियों ने ये बिल्ले लगाने छोड़ दिए। चूंकि बिल्ल अक्सर छिप जाया करते थे, इसलिए 1525 में पोप क्लीमेंट सप्तम ने यह व्यवस्था कर दी कि यहूदी अब पीला हैट या बोनेट पहना करेंगे।

अस्पृश्यों की मौजूदा स्थिति के दौरान किसी जमाने में इंग्लैंड के कैथोलिक ईसाइयों की स्थिति की याद आने लगती है। कैथालिक ईसाइयों पर अनेक प्रकार की पाबंदियां थीं और उन्हें अनेक कष्ठ भुगतने पड़ते थे। इनकी सूची निम्नलिखित है :

1. मौजूदा कानून के अनुसार कैथोलिक ईसाइयों के विवाह या ऐसे सभी विवाह गैर–कानूनी हैं, जो कैथोलिक पादरियों के द्वारा संपन्न कराए जाते हैं। इसके फलस्वरूप उस पक्ष को जिसका त्याग किया जाता है, चाहे उसका कारण कुछ भी क्यों न हो, स्थानीय चर्च में या अपने देश के राज्य की सरकार को कुछ भी हरजाना नहीं मिलेगा। यह विधान भी है कि इस अपराध के लिए उस पादरी को देश निकाला दे दिया जाए या उसे जेल में डाल दिया जाए या उसे निर्जन स्थान में भेज दिया जाए।

2. मौजूदा कानून के अनुसार चूंकि कैथोलिक पादरियों के भरण–पोषण या कैथोलिक पूजा–पद्धति पर दिया गया खर्च अंधविश्वास के प्रयोजनों पर किया गया खर्च समझा जाता है, इसलिए यह धनराशि जब्त की जा सकती है, अगर कोई व्यक्ति उसे हड़प लेता है, तब वह धनराशि कानून के तहत उससे वसूल नहीं की जा सकती। इस प्रकार की घटनाओं का उल्लेख किया जा सकता है।

3. महामहिम की थल और जल सेना में काम करने वाले कैथोलिक अपने धर्म की रीति के अनुसार रविवार और अन्य त्यौहारों पर पूजा के लिए गिरजाघरों में नहीं जा सकते थे और उन्हें अपनी इच्छा के विरूद्ध इन्हीं दिनों प्रोटेस्टेंट / गिरजाघरों में जाने के लिए मजबूर किया जाता था। यह ऐसा दोष था, जिसके कारण बहादुर और वफादार सैनिकों में असंतोष व्याप्त था और यह असंतोष तब व्यक्त होता था, जब हर व्यक्ति से संगठित हो शत्रु का सामना करने के लिए यह अपेक्षा की जाती थी कि ऐसे क्षणों में यूनाइटेड किंगडिम एकजुट रहेगा।

4. चार्ल्स द्वितीय के 13 वें आदेश के द्वारा जिसे प्रायः कारपोरेशन एक्ट कहा जाता है, सभी कैथोलिक ईसाइयों को नगरों और कारपोरेशन के प्रशासन कार्य से वंचित कर दिया गया था।

5. चार्ल्स द्वितीय के 25 वें आदेश के द्वारा जिसे प्रायः टेस्ट एक्ट कहा जाता है, सभी कैथोलिक ईसाइयो को सिविल और सेना की नौकरियों से वंचित कर दिया गया था।

6. विलियम तृतीय के 7 वें व 8 वें आदेश के द्वारा लगभग 27वीं शताब्दी में रोम के कैथोलिक ईसाइयों को

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

चुनाव में मत डालने से वंचित किया जा सकता था।

7. चार्ल्स द्वितीय के 30 वें आदेश, खंड 2 के द्वारा लगभग पहली शताब्दी में रोम के कैथोलिक पियरों को संसद में पैतृक आधार पर मिलने वाली सदस्यता से वंचित कर दिया गया था।

8. इसी कानून के द्वारा रोम के कैथोलिकों को हाउस आफ कामन्स में सदस्यता से वंचित कर दिया गया था।

9. रोम के कैथोलिक ईसाइयों को अनेक कानूनों के द्वारा चर्च के अधिकारियों को अपनी संपत्ति का अधिकार हस्तांतरित करने से वंचित कर दिया गया था, जो कानून के तहत यहूदियो तक को मिला हुआ था।

10. यद्यपि महामहिम की जल सेना और थल सेना मे अधिकांश लोग कैथोलिक थे, तब भी किसी भी व्यवस्था में उन्हें धार्मिक सुविधाएं आदि नहीं दी गई थीं, लेकिन यदि वे उन धार्मिक रीतियों का पालन करने से अस्वीकार कर देते जो राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त गिरजाघरों द्वारा निश्चित की गई थी, तब उन्हें भारी से भारी दंड और यातना दी जा सकती थी। सेना के नियम के खंड 1 में यह व्यवस्था थी कि यदि कोई सैनिक डिवाइन सर्विस और सर्मन के समय अनुपस्थित रहता है, तब पहली बार में अपराध स्वरूप उसके वेतन में से एक शिलिंग जब्त कर लिया जाएगा। अगर वह दूसरी बार या बार-बार अपराध करता है, तब हर बार एक शिलिंग जब्त करने के अतिरिक्त उसे जेल की सजा भी भुगतनी पड़ेगी। इस कानून की धारा 2 और धारा 5 के तहत यह भी विधान किया गया कि अगर वह अपने से ज्येष्ठ अधिकारी को किसी विधि-सम्मत आदेश की अवमानना करता है (और निश्चय ही अगर वह डिवाइन सर्विस का सर्मन के समय उपस्थित रहने के बारे में अपने ज्येष्ठ अधिकारी के आदेश की अवमानना करता है) तब उसे मृत्यु-दंड या और कोई दंड, जैसा भी जनरल कोर्ट मार्शल द्वारा दिया जाए भगुतान पड़ेगा।

11. महामहिम के अन्य प्रजाजनों की भांति रोम के कैथोलिक ईसाइयों को राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त धर्म का समर्थन करना पड़ेगा। इस प्रकार उन्हें दो धर्मों की विधियों का पालन करना पड़ेगा। निश्चय ही वे इस संबंध में कोई उज्र नहीं करते थे, लेकिन वे यह अनुभव करते थे कि उनकी यह शिकायत उचित ही है कि उनके धर्म को वैसी मान्यता प्राप्त नहीं है, जैसी कि प्रोटेस्टेंट धर्मावलंबियों को प्राप्त है।

12. अस्पतालों व फैक्टरियों में और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर जब कैथोलिक पादरी रोटी और कुछ पेय बांटने आते हैं, तब गरीब कैथोलिक बच्चों को घुसने नहीं दिया जाता और रोम के गरीब कैथोलिक ईसाइयों के बच्चों को उनके माता-पिता के सामने कभी-कभी प्रोटेस्टेंट स्कूलों में जबरदस्ती डाल दिया जाता है। कैथोलिक ईसाइयों की तरह अस्पृश्यों को भी बहिष्कृत किए जाने की यंत्रणा भुगतनी पड़ती है।

II

निन्नलिखित निबंध की मूल अंग्रेजी पाठ की प्रति श्री एस.एस.रेगे से प्राप्त हुई थी। चूंकि यह 'नीग्रो और गुलाम-प्रथा' (इस अध्याय की योजना के विषयों में से एक विषय) के बारे में है जिस पर उक्त विवेचन में कोई चर्चा नहीं हुई है, अतः इसे यहां सम्मिलित किया जाता है-संपादक)

ऐसा लगता है कि विधाता ने अफ्रीका महाद्वीप के साथ स्थाई रूप से संधि कर उसके भाग्य में लिख दिया है कि वह एशिया और यूरोप के स्वतंत्र और सभ्य निवासियों के लिए गुलामों की एकमात्र जन्मस्थली रहेगा। अमरीका में यूरोपियनों द्वारा गुलाम के रूप में नीग्रो का आयात शुरू करने के पूर्व अरब निवासियों द्वारा एशिया में नीग्रो लोगों का आयात किया जाता था। हालांकि स्थिति यही थी। लेकिन अमरीका में और अंग्रेजी की नई बस्तियों में नीग्रो लोगों को किस तरह गुलाम बनाकर रखा जाता था, इसका बड़ा ही कारूणिक इतिहास है, जिसे सुनकर लोग एशिया में गुलाम के रूप में नीग्रो लोगों के आयात की कथा को भूल जाते हैं, और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि अमरीका में नीग्रो लोगों का यूरोप के निवासी किस प्रकार आयात करते थे, यह सब एक बहुत ही वीभत्स कार्य होता था। यह आयात 16वीं शताब्दी के पहले दशक में शुरू हुआ और 19वीं शताब्दी के मध्य तक चला।

कोलंबस जब पहली बार 1492 में बहामा द्वीप पर पहुंचा, तब उसके बाद आधी शताब्दी में स्पेनवासियों ने मेक्सिको से पेरू होते हुए युरुगुए तक के विशाल भू-भाग को जीत लिया था और उन्होंने अंशतः इस पर कब्जा भी कर लिया था। इसमें बड़े-बड़े वेस्ट इंडियन द्वीप भी शामिल थे। पुर्तगालियों ने ब्राजील में 1531 में अपनी बस्तियां बसानी शुरू की थी। पुर्तगालियों और स्पेनवासियों ने यहां आते ही अपने-अपने अधीन के क्षेत्रों की प्राकृतिक संपदा का दोहन करना शुरू कर दिया, मुख्य भू-भाग में स्थित सोने और चांदी की खानों का पता लगाना और उन्हें खोदना शुरू कर दिया और द्वीपों की उपजाऊ भूमि का तम्बाकू, नील और गन्ने की खेती शुरू की। लेकिन उनको तुरंत अपेक्षित संख्या में श्रमिकों की पूर्ति की समस्या का सामना करना पड़ गया। उन्हें पर्याप्त संख्या में श्रमिक चाहिए थे। वहां पर श्वेत श्रमिकों की मजदूरी ज्यादा थी और यूरोपवासी वहां की उष्णकटिबंधीय तेज धूप बर्दाशत नहीं कर सकते थे। अतः वहां यूरोपवासियों को स्वयं काम करने में कष्ट होता था। वहां पर गैर-यूरोपीय श्रमिक के रूप में वहां के स्थानीय लोग ही उपलब्ध थे। इस भू-भाग को जीतने के दौरान पुर्तगालियों और स्पेनवासियों ने अधिकांश इंडियन (स्थानीय) लोगों का संहार किया था। इन आक्रमणों से डरकर बहुत से इंडियन लोग भागकर पहाड़ों और जंगलों में जाकर छिप गए थे। जो भी उपलब्ध हुए, उन्हें गुलाम बना दिया गया और खानों में खुदाई के काम पर लगा दिया गया। पुर्तगालियों और स्पेनवासियों के कोड़ो की मार खाकर और उनसे खानों और खेतों में जिस निर्दयता से अनथक काम लिया जाता था, उससे वहां के स्थानीय निवासी बीमार पड़ जाते और मर जाते थे।

दक्षिणी अमरीका के आंरभिक स्पेन के विजेता कनक्विजटेडर के नाम से जाने जाते थे। ये कनक्विजटेडर निकालस दि ओवेडो के नेतृत्व में, जो कोलंबस के तुरंत बाद यहां आया था, अपने साथ बात्रोलोमे दि लस कसास नामक एक नवयुवक पादरी को ले आए। यह पादरी अपने पवित्र आचरण के लिए विख्यात था। लस कसास पर कोर्ट आफ स्पेन में यह आरोप लगाया गया कि वह इन इंडियन (स्थानीय) लोगों के साथ इस आशा से स्नेहपूर्ण व्यवहार करता था कि वह इनको पवित्र ईसाइ धर्म में दीक्षित कर लेगा। लस कसास मेक्सिको का प्रथम बिशप था। लस कसास ने अपने उस कर्तव्य का पालन करते हुए जिसके लिए उस पर आरोप लगाया गया था, हाईती में कनक्विजटेडरों द्वारा वहां के इंडियन निवासियों पर किए जाने वाले निर्दयतापूर्ण व्यवहार को अपनी आंखों से देखा था और जीवन-पर्यन्त हाईती के बचे-खुचे बेचारे इंडियनों की, जिन्हें कैरीबियन कहा जाता था, उनके मालिकों के हाथों नष्ट होने से रक्षा की। कैरीबियन लोग विनम्र, सीधे-सादे और मिलनसार नस्ल के थे। जब कोलंबस ने उनका पता लगाया था, तब उनकी संख्या 1,000,000 से कम नहीं थी। ये विभिन्न राज्यों में बंटे हुए थे। इन राज्यों में इनके प्रमुख, जिन्हें कैशीक कहा जाता था, शांतिपूर्वक राज्य करते थे। कोलंबस के बाद स्पेन के जो साहसी लोग यहां आए, उनके सुनियोजित अत्याचारों के कारण इनकी संख्या मुश्किल से 60,000 रह गई। यह कहा जाता है कि सभी गांवो के लोगों ने अन्य लोगों को भी आमंत्रित कर आत्महत्या कर ली, क्योंकि उनके द्वारा किए जा रहे नरसंहार और क्रूर अत्याचार का और कोई निदान नहीं था। लस कसास ने आत्मदाह की अनेक घटनाओं को स्वयं देखा था। लस कसास ने इन घटनाओं को लेकर क्षोभ व्यक्त किया। लेकिन उसका विरोध करना व्यर्थ था और उसके उस विरोध का निष्फल होना निश्चित था। जंगलो की सफाई, जमीन की जुताई और खानों की खुदाई तो होनी ही थी। इसके बिना ईश्वर-प्रदत्त राज्य मनुष्य के लिए स्वर्ग नहीं बन सकता था। लस कसास ने इसे अनुभव कर लिया था। लेकिन उसे इस बात की बड़ी चिंता थी कि अगर यह सब कार्य होते हैं, तब यहां के इंडियनों को कितने कष्टों को भोगना पड़ेगा। उसकी दया की भावना ने उसे नीग्रो लोगों के निःशुल्क आयात की स्वीकृति देने के लिए किंग आफ स्पेन को प्रार्थना-पत्र भेजने के लिए प्रेरित किया। स्पेन की सरकार ने 1511 में राजाज्ञा की कि भारी संख्या में नीग्रो लोगों को इस नई दुनिया में ले जाया जाए। इसके अनुसार माल की तरह नीग्रो लोगों से लदे जहाज में ले जाया जाए। इसके अनुसार माल की तर नीग्रो लोगों से लदे जहाज इस नई दुनिया को मनुष्य का स्वर्ग बनाने के लिए यहां आए। कुछ वर्षों तक यहां के इंडियनों और नीग्रो लोगों, दोनों के साथ-साथ मिलकर कनक्विजटेडरों के अधीन काम किया। इंडियनों की तुलना में नीग्रो लोगों की काठी मजबूत सिद्ध हुई। एक कनक्विजटेडर का कथन है कि जब उसने चार ब्रिगोटाइनो के लिए जो अटलांटिक महासागर और प्रशांत महासागर के बीच इस्थमस (जलसंधि) से होकर जाते थ, लकड़ी के लट्ठे भरने के काम पर लगाया था। अंत में उसे पता लगा कि इस काम में पांच सौ इंडियनों की मृत्यु हो गई और तीस के तीस नीग्रो वैसे के वैसे ही बच गए। ये नीग्रो लोग मरन से बच ही नहीं गए, बल्कि इतने हष्ट-पुष्ट हो गए कि लोगों की तो यह आम धारणा-सी बन गई कि जब तक नीग्रो को फांसी नहीं दे दी जाती, तब तक वह नहीं मर सकता, क्योंकि अभी तक इनमें से कोई भी कमजोर होकर मरता नहीं सुना गया है।

नीग्रो लोगों ने अपने व्यवहार और आचरण से यह प्रमाणित कर दिया कि इंडियन लोगों की अपेक्षा वे अधिक उपयोगी साधन हैं। इस कारण इंडियन लोगों को तो छोड़ दिया जाता था और श्रमपूर्ण कार्य के लिए नीग्रो लोगों को प्राथमिकता दी जाती थी। ऐसा इसलिए होता था कि विधाता ने इंडियनों को कम और नीग्रो लोगों का अधिक मजबूत बनाया है। इसका परिणाम यह हुआ कि इंडियन लोग तो गुलाम होने से बच गए, लेकिन नीग्रो लोगों के भाग्य में यह वस्तु आ गई जो कनक्जिवटेडर उन पर लागू करना चाहते थे - एक ऐसा भाग्य जिसे अपनाने के लिए पवित्र और दयालु हृदय वाले पादरी लस कसास ने उन्हें आमंत्रित किया था और जिसके योग्य होने के बारे में नीग्रो लोगों ने अपने सामर्थ्य को स्वयं सिद्ध कर दिया था।

जब लोगों को यह पता चल गया था 'चार इंडियनों की अपेक्षा एक नीग्रो ज्यादा काम करता है, तब नीग्रो लोगों का व्यापार करने के लिए तुरंत एक नियमित मंडी खुल गई। पुर्तगालियों ने अफ्रीका के पश्चिमी तट पर जो मंडी स्थापित की, उससे एकदम मुनाफा होने लग गया और यह स्वाभाविक था, क्योंकि नई दुनिया की अपार संपत्ति का उपयोग नीग्रो लोगों के श्रम के बिना असंभव था। लोग इस नए व्यापार में इस तरह तल्लीन हो गए कि पूर्व की ओर जाने के लिए नए रास्ते की खोज का काम जो शुरू ही हुआ था, वह छोड़ दिया गया।

व्यापार के इस नए क्षेत्र में भाग लेने के लिए यूरोप के विभिन्न देशों में कड़ा मुकाबला था। नई दुनिया से संपत्ति का जो प्रवाह हो रहा था, उस पर स्पेन और पुर्तगाल के एकाधिकार के बारे में पोप की ओर से एक आदेश जारी हुआ। अंग्रेजों और डचां को यह आशंका हो गई कि अमरीका के संसाधनों पर इस प्रकार एकाधिकार के हो जाने से सारे यूरोप को खतरा पैदा हो जाएगा और वह इसे न होने देने के बारे में दृढ़ थे।

अंग्रेजों ने अपने राष्ट्र के लाभ के लिए इस व्यापार को अपने हाथ में लेने के लिए ठोस रूप से पहल की। इस संबंध में पहला सौदा 1553 में हुआ, जब अफ्रीका के तट से चौबीस नीग्रो लाए गए और उन्हें चुपचाप अंग्रेजों के हाथ बेच दिया गया था। इनमें सबसे ज्यादा साहसी और जो इतिहास में सबसे बड़े निर्दयी आदमचोर के रूप में कुख्यात हुआ, जॉन हाकिन्स नाम का अंग्रेज था। एलिजाबेथ प्रथम से राजाज्ञा प्राप्त कर 'जीसस' नामक एक बड़ा जहाज लेकर वह अफ्रीका से नीग्रो लोगों को लाने के लिए समुद्री यात्रा पर निकल पड़ा। उसने इन नीग्रो लोगों को वहां से लाकर स्पेन की बस्तियों में बेच डाला। इसके बाद स्पेन के एकाधिकार को समाप्त करने का दृढ़ निश्चय कर सर फ्रासिंस ड्रेक ने हाकिन्स का अनुसरण किया। इन साहसपूर्ण यात्राओं में एक-दूसरे के जहाजों से माल की चोरी की घटनाओं को लेकर अंतर्राष्ट्रीय विवाद उठ खड़े हुए, जिनकी चरम परिणति स्पेन के युद्धपोतों के बेड़े के विरूद्ध संघर्ष हुआ और उसे नष्ट कर डाला गया।

ध्यान देने की बात यह है कि इन झगड़ों में प्रत्येक

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

राष्ट्र निर्लज्जतापूर्वक इस बात का दावा करता था कि उसके राष्ट्रिकों द्वारा नीग्रों लोगों को दूसरे के जहाजो पर से उड़ाकर अपने जहाजों में भर लेने का काम व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं था, बल्कि सार्वजनिक हित में था, जिसे उनकी सरकार से समर्थन प्राप्त था।

ऐसा लगता है कि गुलाम बनाने के उद्देश्य से नीग्रो लोगों को लाने के लिए 'जीसस' नामक जहाज के उपयोग में निहित विडंबना पर्याप्त नहीं थी, इसलिए एक और घटना हुई जो उससे कम विडंबनापूर्ण नहीं थी। यह घटना थी 'मेफ्लावर' नामक जहाज द्वारा प्लाईमाउथ रॉक पर पिलग्रिम फादर्स (अंग्रेज प्यूरिटन मतावलंबी पादरी लोगों का दल) के आगमर के साथ –साथ बारनेकल और अन्य समुद्री क्षतिकारक जीवाश्मों स क्षतिग्रस्त ब्रिग पोत (दो मस्तूल वाला जहाज) पर बीस नीग्रो लोगों का वर्जीनिया में जेम्सटाउन में आगमन। यह जहाज जेम्स नदी तक गया और इसमें से नीग्रो अमरीका में वर्जीनिया की प्रथम सफल बस्ती के सभ्य साहसिको के उपयोग के लिए लाए गए थे। इस प्रकार अमरीका में नीग्रो लोगों और पिलग्रिम फादर्स का उद्देश्य उनकी स्वतंत्रता की सुरक्षा करना और नीग्रो का उद्देश्य अपनी स्वतंत्रता को गंवाना था। जहां तक संख्या का संबंध है, अमरीका की इन नई बस्तियों की जनसंख्या में नीग्रो लोगों की कुछ समय तक प्रमुखता रहीं। वास्तविक अर्थ में अमरीका और उसके द्वीपों को मुख्यतः अफ्रीका से आए लोगों और नीग्रो लोगों ने बसाया। 1800 से पहले तक अमरीका में जितने नीग्रो लोगों को लाया गया, उनकी संख्या वहां पर सभी यूरोपियों की कुल संख्या कम थी। यह लंबी–लंबी लड़ाइयों के कारण और भी घट गई थी, और यह अपनी पिछड़ी हुई संस्कृति से उभर रहा था। यहां जो नीग्रो आयात किए गए, उनकी हैसियत बहुत समय तक अनिश्चित रही। डच लोग जिन बीस नीग्रो लोगों को लाए थे और जो जेम्सटाउन में उतरे थे, उन्हें बस्ती में तुरंत गुलाम की संज्ञा नहीं दी गई। उन्हें उसी आधार पर स्वीकार किया गया, जैसे कि वे ठेके पर रखे गए नौकर हों। यह पता चला है कि वर्जीनिया नामक बस्ती के 1624 और 1625 के मस्टर रोलों में तेईस नीग्रो लोगो के नाम दर्ज थे, जिनमें से सभी नीग्रो उसी श्रेणी के श्वेत लोगों की तरह 'सेवक' के रूप में दर्ज थे। यह भी लिखा मिलता है कि बीस नीग्रो लोगों के आगमन के चौंतीस वर्ष बाद इनमें से एक एंथनी जॉनसन नामक नीग्रो ने न्यायालय से अपने समर्थन की पुष्टि के संबंध में यह आदेश प्राप्त किया कि जॉन कैस्टर नामक एक दूसरे नीग्रो की सेवाओं पर उसका स्थाई अधिकार है। गुलामी की परिभाषा पचास वर्ष तक निश्चित नहीं हुई और जिन उपायों से यह निश्चित हुई, वे बहुत धीरे–धीरे किए गए।

शुरू–शुरू में सेवा के संबंध में एक कानून होता था जो सभी सेवकों पर चाहे वे नीग्रो हों या श्वेत, लागू होता था। ज्यों–ज्यों समय बीतता गया त्यों–त्यों नीग्रो सेवकों और श्वेत सेवकों के साथ व्यवहार में अंतर किया जाने लगा। यह भेद इन बाहरी और विधर्मी लोगों के भय के कारण किया जाने लगा जो परंपरा और रीति–रिवाजों में रचते–पचते जा रहे थे। इस भय के कारण धीरे–धीरे अफ्रीकावासियों की हैसियत में संशोधन हुआ और जो नीग्रो सेवक कह जाते थे, उन्हें नीग्रो गुलाम कहा जाने लगा। बाद में ज्यों–ज्यों स्थिति बदलती हुई, त्यों–त्यों सेवकों से संबंधित कानून और रीति–रिवाजों में संशोधन होते रहे, और अमरीका की इन विदेशी बस्तियों में नीग्रो लोगों को गुलाम के रूप में रखने की प्रथा का विकास होता गया। सेवक से गुलाम के रूप मे यह अंतरण दो चरणों में पूरा हुआ। इस अंतरण का पहला चरण वह है, जब नीग्रो लोगों का आजन्म सेवक के रूप में रखने की प्रथा को मान्यता दी गई। जैसा कि कहा जाता है, गुलाम होने का लक्षण यह नहीं कि किसी की राजनैतिक या नागरिक स्वतंत्रता छिन जाती है, बल्कि इस क्षति का स्थाई और अंतिम होना है जो चाहे स्वैच्छिक हो या अनैच्छिक हुई हो। यह अन्य प्रकार के दासत्व, जैसे मध्य–कालीन गुदस्तादार (वैसेलेज) और अर्ध–गुलाम (विलियनेज) तथा आधुनिक खेतिहर गुलाम (सर्फडम), और द्रव्य के बजाय मात्रानुसार तकनीकी सेवक (सर्वीट्यूड) से भिन्न होता है जो स्थान या काल के आधार पर सीमित होता है। खेती करने वाले मालिक अपने श्वेत सेवकों की सेवा–अवधि बढ़ाने के प्रयत्न में तो सफल नहीं हो सके, लेकिन इन 'अश्वेत' लोगों के मामले में वे सफल हो गए। उनके प्रयत्नों को सार्वजनिक आधार पर समर्थन मिला क्योंकि इन 'अश्वेत' लोगों के बारे में यह धारणा हो गई थी कि अगर इन्हें नियंत्रण में नहीं रखा गया तो ये खतरनाक हो जाएंगे।

नीग्रो सेवकों को नीग्रो गुलाम के रूप में बदलने के लिए दूसरा उपाय यह किया गया कि गुलाम नीग्रो मां की अवधि को बढ़ा दिया गया और उसके बच्चों को भी गुलाम बना दिया गया। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि नीग्रो मां को अपने अधीन गुलाम बनाकर रखने से उसके बच्चों पर भी उसके मालिक का नियंत्रण हो जाता था। यह स्पष्ट है कि इन बच्चों के मां–बाप जीवन–भर गुलाम रहने के कारण अपनी संतान के पालन–पोषण के लिए कोई ठोस व्यवस्था नहीं कर सकते थे, और इनका पालन–पोषण भी मालिक पर निर्भर करता था। यह परिवर्तन कानूनी रूप में आने के बहुत पहल रीति–रिवाज के रूप में हो गया था। कानून के रूप में इसे अमरीका के विभिन्न राज्यों में 1662 से 1741 के बीच लागू किया गया।

इस प्रकार नीग्रो गुलाम बन गए, जो मूलतः केवल सेवक होते थे। ध्यान देने की बात यह है कि अफ्रीका में, जो नीग्रो लोगो की जननी रहा है, गुलाम–प्रथा वहां की मूल संस्था थी और बहुत पुरानी थी। दासत्व की सबसे अधिक प्रचलित विधियां ये थीं – (1) जन्म से ही गुलाम होने से, (2) कर्ज के बदले गुलाम के रूप में बिक जाने से, (3) युद्ध के पकड़े जाने पर गुलाम बना दिए जाने से, और (4) आपसी वैर या लोभ या लाभ से प्रेरित होकर किसी का अपहरण कर उसे गुलाम के रूप में बेच दिए जाने से। नीग्रो वस्तुतः गुलाम–प्रथा से पूरी तरह हिले–मिले हुए थे और गुलाम और मालिक होने, दोनों प्रकार का स्वयं अनुभव था। इसलिए जब किसी नीग्रो को जबरदस्ती मालिक से गुलाम बना दिया जाता और वह मालिक नहीं रह जाता था, तब किसी से हृदय में उसके प्रति वैसी ही सहानुभूति नहीं उत्पन्न होती थी। लेकिन अगर इसे अपने किए का उचित दंड भी मान लिया जाए तो भी उस नई दुनिया में जहां उसे लाकर रखा जा रहा है, गुलाम के रूप में उसकी स्थिति उन कष्टों के संदर्भ में जो उसे उसके नए और विदेशी मालिक देते थे, थोड़ा–बहुत क्रोध तो पैदा कर ही सकती थी।

नई दुनियां में जहां नीग्रो लोगो को गुलामी की प्रथा में ढाला जाने लगा, उन्हें कितने और किस प्रकार के कष्ट दिए जाते थे, यूरोप और एशिया के वासियों को उनकी कल्पना करना संभव नहीं। इन कष्टों का वर्णन इन्हें तीन शीर्षकों में बांटकर किया जा सकता है– पकड़े जाते समय का कष्ट, यात्रा में दिया गया कष्ट और जब उनसे काम कराया जाता है तब दिया जाने वाला कष्ट। पहला कष्ट तो उस प्रक्रिया में होता था, जिस प्रक्रिया द्वारा गुलाम बनाने के लिए नीग्रो लोगो की धर–पकड़ की जाती थी। शुरू–शुरू में तट पर अचानक जहाज के पहुंचने पर उनकी धर–पकड़ की जाती थी। लेकिन बाद में नीग्रो जहाजों की टोह लेना और भागकर जंगलों व झाड़ियो में छिप जाना सीख गए। बाद में ये समुद्री व्यापारी भीतरी इलाके में कभी–कभी आ जाते और वे सामान्यतः स्थानीय व्यापारियों या छोटा–मोटा धंधा करने वालों के साथ धंधा करने लगे। वे यूरोप से सस्ता माल, जैसे कपड़ा, नकली मोती, लोहे से बना समान, छोटी–बड़ी बंदूकें और कारतूस, शराब आदि लाते और उसके बदले उनसे गुलाम और उनके कबीले के मालिकों को खरीद लिया करते। इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि शक्तिशाली कबीले के सरदारों ने इस प्रकार के माल, खासतौर से बंदूकों या शराब के प्रति कभी अनाकर्षण प्रकट किया हो या ऐसी वस्तुओ के प्रति वे कभी आकृष्ट न हुए हों। यह देखा गया कि छोटे से छोटे अपराध पर भी लोगों को दंड स्वरूप गुलाम बना लिया जाता था, निजी स्वार्थ के लिए कबीलों के बीच परस्पर लड़ाइयाँ, शांति के समय औरतों और बच्चो का अपहरण अफ्रीकी जीवन का लगभग अभिन्न अंग बन गया और ज्यों–ज्यों भीतरी भू–भाग में व्यापार फैलने लगा, त्यों–त्यों इन घटनाओं का सिलसिला भी बढ़ता गया।

दूसरा कष्ट इन नीग्रो लोगों को तब भोगना पड़ता, जब वे अमरीका ले जाए जाते थे। इनके व्यापारी इनको खरीदने के बाद एक टोली में तट पर पैदल चलाते। इसमें आदमियों, औरतों व बच्चों को कोई ख्याल नहीं किया जाता था। कभी–कभी इन्हें काफी दूर तक चलना पड़ता। आमतौर पर इनके पैरों में बेड़ियां पड़ी होती, जिससे वे बचकर भागने न पाएं। कभी–कभी इनके गले में भी छल्ला (तौक) डाल दिया जाता था। यह छल्ला एक छड़ से एक लंबे पोल से बांध दिया जाता था जो 'स्लेव स्टिक' कहलाती थी। इन्हें अपने–अपने सिर पर खाने की सामग्री और रास्ते के लिए जरूरी अन्य सामग्री, हाथी दांत या अन्य स्थानीय रूप से उपलब्ध माल भी ढोना पड़ता था, जो उनके खरीददार ने खरीदा होता था। यात्रा की यह कठोरताएं कमजोर नीग्रो लोगों को बहुत भारी पड़ती। जो गुलाम रास्ते में बीमार पड़ जाते, उन्हें मौत के घाट उतार दिया जाता या उन्हे अपनी मौत मरने के लिए वैसा ही छोड़ दिया जाता। जिन रास्तों से ये गुलाम अक्सर ले जाए जाते थे, उन रास्तों पर इधर–उधर नर–कंकाल या उसकी हड्डियां पड़ी मिलतीं। तट पर पहुंचने पर इनको गुलामों वाले जहाजों पर भर दिया जाता, जो इनको ले जाने के लिए खासतौर से बनाए गए होते थे। जहाज के अंदर माल रखने वाली जगह को तीन–तीन फुट के अंतर पर आड़े तख्ते रख, बांट दिया जाता था, जिन्हे 'डेक' कहते हैं। इनके बीच सीढ़ी होती थी। इस तरह जो खाने बने होते, उनमें इन गुलामों को दो–दो की संख्या में बेड़ी पहना कर लिटा दिया जाता था। आदमियों और औरतों को अलग–अलग रखा जाता था। जहाज में जितने ज्यादा गुलाम भरे होते, उतना ज्यादा लाभ होता। इसलिए इनको ठूंस–ठूंसकर इस तरह भरा जाता कि ये मुश्किल से करवट ले सकते थे। एक सौ पचास टन वाले जहाज में छह सौ तक गुलाम भरे जाते थे। अफ्रीका के तट से ब्राजील तक का रास्ता छोटा था, लेकिन यहां से वेस्ट इंडीज तक के तथाकथित मिडिल पैसेज को जो इन गुलामों के वितरण का मुख्य केंद्र था, खराब मौसम और तेज हवाओं के कारण तय करने में कई हफ्ते लग जाते। अगर मौसम अच्छा होता, तब गुलामों को ऊपर 'डेक' पर लाया जाता और उन्हें व्यापार के लिए नाचने को कहा जाता या उन्हें जबरदस्ती नचाया जाता था। ये अक्सर बीमार रहते और जो लोग खाना बंद कर देते, उनको जबरदस्ती खिलाने के औजार इन जहाजो पर रहते। लेकिन 18वी. शताब्दी के उत्तरार्ध में स्वीकार किया गया कि औसतन इन गुलामो में से इनकी संख्या छठा भाग इस समुद्री यात्रा में ही मर जाता था। जब यह यात्रा खत्म होती, तब इन गुलामों की जांच होती और ये बेचे जाने के लिए तैयार किए जाते। तूफान या इनको ठीक तरह न रखने पर इनके जो जख्म हो जाते, उनकी मरहम–पट्टी कर दी जाती। लेकिन जहां तक मुमकिन होता, इन जख्मों को छिपा दिया जाता। लेकिन बंदरगाहों पर एजेंट लोगों की अक्सर यही शिकायत रहती कि इन पार्सलों में जो नीग्रो माल आया है, वह खराब, घटिया या बुरी तरह से घिसा–पिटा है। आखिर में जहाज पर या खुले बाजार में इन गुलामों को हर–एक का नाम बताकर या बोली लगाकर बेचा जाता था। 18 वीं शताब्दी में एक हट्टे–कट्टे नीग्रो की कीमत बढ़कर 60 पौंड तक हो गई थी। बीमार और घायल नीग्रो लोगों को कमजोर नीग्रो स्त्रियों और बच्चों के साथ मिलाकर बचे–खुचे माल की तरह सस्ते दामों में बेच दिया जाता था। आखिर में जब ये नीग्रो खेतों तक पहुंचते, तब उन्हें शेष जीवन में लिखे भोग को भोगने के लिए तैयार होने से पहले एक और संकट से गुजरना पड़ता था। काम पर लगाए जाने पर पहले महीनों की अवधि पक्का होने की अवधि कही जाती थी, इस दौरान नए गुलामों में से औसतन एक तिहाई गुलाम शरीर और मन से नई जलवायु या खाना–पीना या परिश्रम में अपने को अनुकूल नहीं कर पाते और वे मर जाते थे। कुल–मिलाकर इस प्रकार मरने वालों की अर्थात जब इन गुलामों को पकड़ने के लिए लड़ाइयां लड़ी जाती या धावे मारे जाते थे, जब उन्हें समुद्र–तट तक पैदल चलाया जाता था, जब वह 'मिडिल पैसेस' से होकर जाते थे और जब उन्हे पक्का किया जाता था–संख्या के बारे में स्थूल रूप से यह अनुमान लगाया गया है कि हर–एक अफ्रीकी

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

नीग्रो पर जब उसे पक्का कर दिया जाता था, एक नीग्रो की मृत्यु होती थी।

तीसरे प्रकार का कष्ट तब भोगना पड़ता था, जब पक्के बनाए गए नीग्रो को जीवन की वास्तविक परिस्थिति से जूझना पड़ता था। नीग्रो गुलामों की पद्धति में उसके मालिक को दो प्रकार के अधिकार मिले होते थे, जो निर्विवाद होते थे। ये अधिकार थे – स्वामित्व का अधिकार और दंड देने का अधिकार। 'स्वामित्व का अधिकार' का बड़ा व्यापक अर्थ होता था। इस अधिकार के तहत मालिक को अपने नीग्रो गुलाम का सेवक के रूप में इस्तेमाल करने का ही अधिकार प्राप्त नहीं था, बल्कि वह उसे सेवा करने के लिए किसी दूसरे को बेच भी सकता था, वह पुश्तैनी आधार किसी दूसरे को दे सकता था। वह अपनी मर्जी के अनुसार जो चाहे कर सकता था। अधिकार की इस अवधारणा का आशय उस गुलाम के व्यक्तित्व के अधीन की गई संपत्ति के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित करना था। संपत्ति के रूप में गुलाम की अवधारणा के कारण वह मालिकों द्वारा अपने कर्ज चुकाने की स्थिति में देय या अधिकृत किए जाने योग्य हो गया। अगर इस प्रकार गुलाम मुक्त भी हो जाए, तो भी वह अपनी मुक्ति के पहले अपने मालिक के द्वारा लिए गए ऋण को चुकाने के लिए इस्तेमाल हो सकता था। गुलामों के व्यक्ति के बजाय संपत्ति के रूप में स्वीकार हो जाने पर, उनकी कानूनी और नागरिक के रूप में स्थिति और भी सीमित हो गई। वह स्वयं कोई संपत्ति न रख सकता था, और न उसका कोई उपयोग ही कर सकता था। यह रोम के कानून के अनुसार नहीं था, जहां गुलामों को अपनी संपत्ति बनाने व रखने का अधिकार था। इसे उसकी निजी संपत्ति (पिक्यूलियन) कहते थे। हालांकि यह सीमित अधिकार था, तो भी वह महत्वपूर्ण अधिकार होता था, क्योंकि यह इस तथ्य को प्रमाणित करता था कि रोम का कानून यह स्वीकार करता था कि संपत्ति होते हुए भी गुलाम का अपना व्यक्तित्व है। चूंकि नीग्रो का गुलाम के रूप में कोई व्यक्तित्व नहीं है, इसलिए वह न तो व्यापार, और न ही अपना विवाह कर सकता था। मालिक द्वारा गुलाम को दंड दिए जाने के अधिकार की व्याख्या नीग्रो के प्रसंग में बड़े ही क्रूर होकर की जाती थी। 1829 में नार्थ कैरोलीन राज्य के न्यायालय में एक मामले में मुख्य न्यायाधीश ने एक मालिक को जिस पर अपने गुलाम को पीटने का आरोप था, बरी करते हुए यह व्याख्या की :

यह कहना गलत है कि मालिक और गुलाम के बीच में संबंध माता–पिता और उनकी संतान के बीच के संबंध जैसे होते हैं। जब माता–पिता अपने पुत्र को कुछ सिखाते हैं, तब उनका उद्देश्य उसे इस योग्य बनाना होता है कि वह एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में अपना जीवन–यापन कर सके और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे उसे नैतिक और बौद्धिक सीख देते हैं। गुलामों के संबंध में स्थिति भिन्न होती है। गुलाम का नैतिक सीख देने का तो अर्थ ही नहीं है। गुलामों की व्यवस्था का उद्देश्य मालिक को लाभ और उसकी सुरक्षा होता है, उसके गुलामों का इससे भिन्न कोई अस्तित्व नहीं होता, उनमें अपने लिए कुछ करने का कोई सामर्थ्य नहीं होता, वे परिश्रम ही करते है, लेकिन उसका फल न तो उनको मिलता है, और न उनकी संतान को। ऐसे लोगों को क्या नैतिक सीख दी जा सकती है, जिससे उन्हें यह आश्वस्त किया जा सके कि उन्हें सहज भाव से या केवल अपने सुख के लिए परिश्रम करते रहना है, क्योंकि यह असंभव है और शायद ही कोई मूर्ख इसे अनुभव या स्वीकार करेगा, यह भी सच नहीं हो सकता? ऐसी सेवाएं उसी से अपेक्षित हो सकती हैं, जिसकी अपनी कोई इच्छा नहीं होती, जो अपनी इच्छाओं को दूसरों की इच्छाओं की पूर्ति में समर्पित कर देता है। ऐसा अनुपालन तभी संभव है, जब शरीर और मन के ऊपर किसी का पूर्ण अधिकार हो। इसके बिना अपेक्षित फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए मालिक को परम अधिकार होना चाहिए, जिससे गुलाम उसके प्रति पूर्ण समर्पित रहे।

दंड देने के बारे में मालिक के अधिकार की इस प्रकार की व्याख्या का अमरीका में प्रभाव यह हुआ कि न्यायपूर्ण दंड के फलस्वरूप यदि कोई नीग्रो कभी मर जाता, तो कानून उसे संयोग से हुई घटना मात्र मानता था। दंड देने के इस अधिकार का मालिकों ने कितनी निर्दयतापूर्वक प्रयोग किया वह 1787 में एंटीगिना के एक निवासी द्वारा लिखे गए पत्रों के उद्धरणों को पढ़कर अनुभव किया जा सकता है। लेखक कहता है :

नीग्रो लोगों को पौ फटते ही उठा दिया जाता है और बीस से साठ तक या उससे भी अधिक संख्या में टोलियां बनाकर उन्हें श्वेत निरीक्षकों की देख–रेख में काम पर लगा दिया जाता है। ये लोग यहां कभी स्कॉटलैंड से आकर ठेके पर मजदूर के रूप में काम करते थे, और अपनी लगन और मेहनत से इन बागानों में अक्सर हाकिम बन जाते थे। इन हाकिमों के नीचे इन नीग्रो लोगों से काम कराने वाले होते। ये लोग अधिकतर अश्वेत होते थे, या गोरी व काली नस्ल के भद्दी शक्ल के वर्णसंकर होते हैं। इनको काम पर होते समय कोड़े दिए जाते हैं, जिससे वे लोगों को दंडित कर सकें, और उन्हें नीग्रो लोगों को जब कभी उन्हें काम में ढिलाई करते देखें, तब उन्हें इन्हीं कोड़ों से मारने का पूरा अधिकार होता है, उन्हें इस बात का कोई ख्याल नहीं रहता कि यह ढिलाई, सुस्ती या थक जाने के कारण है, न ही वे इस बात का ख्याल करते हैं कि नीग्रो की उम्र क्या है, या वह पुरूष है या स्त्री। बारह बजे उन्हें अंदर कर लिया जाता है (अर्थात काम पर से छुट्टी मिल जाती है), जिससे वे फिर काम करने के लिए हरे–भरे हो सकें, साढ़े बारह बजे घंटी बजती है तब वे बाहर निकल पड़ते हैं और अपने काम पर तब तक लगे रहते हैं, जब तक सूर्यास्त नहीं हो जाता।

इस द्वीप पर गुलामों को जो दंड दिया जाता है, वह तरह–तरह का और अत्यंत यातनापूर्ण होता है।.... इनमें एक है 'थंबस्कू' अर्थात अंगूठों को एक–दूसरे पर रखकर मशीन द्वारा दबाना जिससे मर्मान्तक वेदना होती है। 'लोहे की नेकलेस' एक तरह का बड़ा छल्ला होता है, जिसे 'लॉक' करने के बाद गले में डाल दिया जाता है, अक्सर इसके बाद एक और छल्ला डाल दिया जाता है...इसे गले में डाल देने के बाद पहनने वाला अपना सिर इधर–उधर मोड़ नहीं सकता है। इनके 'बूट' भी लोहे के लंबे पाइप सरीखे होते है, इनका घेरा पूरे चार इंच का होता है और वे घुटनों तक आते हैं। इन गुलामों को ये बूट अवश्य पहनने पड़ते हैं और इन्हें पहन कर ही काम करना पड़ता है। दोपहर के समय गले में लोहे के छल्ले और पैरों में लोहे के बूट पहने शहर की सड़कों पर अक्सर ये दिखाई पड़ जाते हैं .... 'स्पर' लोहे के छल्ले होते हैं, जो बूट जैसे ही होते हैं। इनमें तीन से चार इंच तक लंबी नुकीली छड़ें लगा दी जाती हैं और इन्हें आड़ा करके रखा जाता है। शरीर के चारों ओर सांकल पहना कर उसे ताले से जकड़ देना इन दलित प्राणियों को सताने का एक और तरीका है।

इन गुलामों के सभी मालिकों को एक की गलती के कारण एक जैसा समझना भयंकर गलती होगी। मालिकों के प्रति गुलामों का अक्सर दोस्ताना रवैया होता और इसी तरह गुलामों के प्रति मालिकों का रवैया भी कृपापूर्ण होता। जो भी हो, यह व्यवस्था पूर्णतः आर्थिक आधार पर आश्रित थी, जिसके कारण यह समझा जाता था कि मनुष्य का सृजन भी एक साधन के रूप में हुआ है और इसका इस्तेमाल मनुष्यता का ख्याल किए बिना किया जा सकता है।

इस बात को पुष्ट करने के लिए और अधिक उदाहरण देने की अब आवश्यकता नहीं है कि अतीत में भारत के अतिरिक्त अन्य देशो में भी निम्न, पराधीन और अधिकार–विहीन वर्ग होते थे। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि पृथक वर्ग के रूप में यह पराधीन और अधिकार–विहीन वर्ग लुप्त हो गए और समाज का अभिन्न अंग बन गए। प्रश्न है, अस्पृश्यता क्यों कर नहीं लुप्त हुई?

इसके अनेक कारण है। इन पर अगले अध्यायों में चर्चा की जाएगी।

साभार :
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङमय खंड–9
पेज संख्या 121 से 140 तक
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

उन्हें समस्याएँ नहीं, समाधान लाने का प्रशिक्षण दें

''मेरे पास समस्याएँ नहीं, समाधान लाओ।''

स्टाफ के लिए दर्द से कराहना बहुत आसान है। मुझे लगता है कि उन्हें इसकी आदत पड़ जाती है। शिकायतें करना छोड़ने के लिए आपको अपने स्टाफ को प्रशिक्षित करना होता है। आप शिकायतों की छूट दे सकते हैं, लेकिन जोर देकर कहें कि अगर वे आपके सामने समस्या ला रहे हैं, तो उसका समाधान भी सुझाएँ। जब भी कोई किसी चीज को गलत बताए, तो पूछें, आप इसके बारे में मुझसे क्या करवाना चाहते हैं? अगर वे शिकायत करें, तो कहें, आपको क्या लगता है, हमे क्या करना चाहिए?

''जब भी कोई किसी चीज को गलत बताए, तो पूछे, 'आप इसके बारे में मुझसे क्या करवाना चाहते हैं?''

मैंने आज तक जिस सबसे अच्छे मैनेजर के साथ काम किया है, वे इसे और आगे तक ले गए थे। वे हमसे कहते थे कि हम उन्हें पहले समाधान सुझाएँ – और उन्हें अनुमान लगाने दें कि हमारी 'समस्या' क्या थी। इससे यह एक तरह का मजेदार खेल बन गया, लेकिन इससे हम तत्काल सोचने के लिए मजबूर हो गए – इसने हमें अपनी शिकायतों में थोड़ा रचनात्मक बनाया। मुझे सुरक्षाकर्मियों के मामले मे दिक्कत आ रही थी। मुझे लग रहा था कि वे क्लोज सर्किट टीवी के फुटेज को बिना देखे डिलीट कर रहे थे, जो सुरक्षा की दृष्टि से ठीक नहीं था। यह मेरी समस्या थी, क्योंकि अगर कोई गड़बड़ होती, तो उसका इल्जाम मुझ पर आता। मैं चाहता था कि वे सावधानी से देखें, मगर कोई समाधान नहीं सूझ नहीं रहा था। दिक्कत यह थी कि मैं बॉस के सामने जाकर इस बात का रोना भी नहीं रो सकता था कि सुरक्षाकर्मी अपना काम ठीक से नहीं कर रहे हैं। अपनी समस्या रखने से पहले मुझे कोई समाधान खोजना था।

फिर मेरी समझ में आ गया कि मुझे बॉस के पास जाने की जरूरत ही नहीं थी। मैं इसे खुद सुलझा सकता था। मुझे यह सुनिश्चित करना था कि सिक्युरिटी स्टाफ यह सोचे कि उनके पास देखने काबिल कुछ था। मैंने उन्हें बताया कि स्टाफ के कुछ सदस्य परिसर में कहीं पर सेक्स का आनंद ले रहे हैं। यह तो मालूम नहीं है कि वे यह काम कहाँ कर हैं, लेकिन उनकी हरकत क्लोज सर्किट कैमरे में कैद होगी। कार पार्क, ऑफिस, गलियारों और बेसमेंट के स्टोरेज इलाकों में कैमरे लगे थे। म। परिणाम। सुरक्षाकर्मी इस तरह नजर रखने लगे, जैसे उनकी जिंदगी इसी बात पर टिकी हो। मेरे बॉस यह देखकर खुश हो गए, क्योंकि यह मेरी जिम्मेदारी थी। उनका ध्यान इस तरफ गया था कि यह काम सही तरह से नहीं हो रहा था और वे इस बात के लिए मेरी खिंचाई करने वाले थे। मैंने अपने बॉस के पास जाकर इस बात का रोना नहीं रोया, 'ओह, सुरक्षाकर्मी ठीक तरह से काम नहीं कर रहे हैं ....। इसके बजाय मैंने खुद ही समस्या का समाधान खोज लिया।

जाहिर है जब सुरक्षाकर्मियों को यह एहसास हो गया कि उन्हें मजेदार तस्वीरें नहीं दिखने वालीं, तो मुझे एक नया समाधान खोजना पड़ा, – लेकिन इसमें काफी समय लगा, और वे बार–बार देखत रहे, ताकि कही सचमुच मजेदार तस्वीरें दिख जाएँ ....।

साभार :
मैनेजमेंट के नियम
पेज संख्या 90 से 91 तक
रिचर्ड टेंपलर

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

अशोक विजयदशमी

वर्तमान में दशहरे का स्वरूप

यह पर्व आश्विन मास की शुक्ल–पक्ष की दशमी को मनाया जाता है। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार इसी दिन रामचन्द्र ने लंका पर चढ़ाई करके महाराजा रावण पर विजय प्राप्त की थी। अर्थात् राम ने रावण की हत्या की थी। विजयदशमी को राष्ट्रीय पर्व की मान्यता प्राप्त है। वैसे मुख्य रूप से यह हिन्दू वर्ण–व्यवस्था के आधार पर क्षत्रिय का त्योहार माना जाता है क्योंकि यहा वर्ण–व्यवस्था के आधार पर ही सब चीजों का बंटवारा निर्धारित है चाहे वह जन्म, कर्म हो या फिर रस्मो–रिवाज या त्योहार आदि ।

दशमी के दिन लगातार दस दिनों तक धमूधाम के साथ निकाली जाती है और रावण वध का प्रदर्शन होता है तथा मेले–तमाशे का आयोजन और दुर्गा पूजन होता है। उसी दिन हिन्दुओं के लिए नीलकठ पक्षी का दर्शन बड़ा शुभ माना जाता है।

दशहरे से जुड़ी हिन्दू मान्यताएं

दशहरे के सम्बंध में कही जाने वाली कुछ कथाएं इस प्रकार हैं–

1. एक बार पार्वती जी ने शंकर से पूछा कि ''लोगों में दशहरे का त्योहार प्रचलित है, इसका क्या फल है?'' तो शिवजी ने बताया कि ''आश्विन शुक्ल दशमी को सायंकाल में तारा उदय होने के समय 'विजय' नामक काल होता है जो सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला होता है। शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए राजा को युद्ध के लिए इसी समय प्रस्थान करना चाहिए।'' इसकी पुष्टि हिन्दू ग्रंथ ज्योतिर्निबन्ध से भी होती है। इस दिन यदि श्रवण नक्षत्र का योग हो तो और भी शुभ है। रामचन्द्र जी ने इसी 'विजय–काल' में लंका के महाराजा रावण पर विजय पाई थी। इसलिए यह दिन हिन्दुओं के लिए बहुत बड़ी खुशी का पवित्र दिन माना जाता है। और क्षत्रिय लोग इसे अपना प्रमुख त्योहार मानते है क्योंकि रामचन्द्र भी क्षत्रिय थे।

हिन्दुओं की ऐसी मान्यता है कि शत्रु से युद्ध करने का प्रसंग न होने पर भी इस विजय–काल में राजाओं को अपनी सीमा का उल्लंघन अवश्य करना चाहिए । अपने तमाम दल–बल को सुसज्जित करके पूर्व दिशा में जाकर शमी वृक्ष का पूजन करना चाहिए । क्योंकि यह शमी वृक्ष सभी पापों को नष्ट करने वाला है तथा शत्रुओं को भी पराजय देने वाला है। इस वृक्ष ने अर्जुन के धनुष को धारण किया था और रामचन्द्र के लिए भी विजय की घोषणा की थी। पार्वती ने शमी वृक्ष के बारे में स्पष्टीकरण चाहा तो शिवजी ने उत्तर दिया ''दुर्योधन ने पांडावों को जुए में हराकर इस शर्त पर वनवास दिया था कि वे बारह वर्ष तक जैसे चाहें वैसे प्रकट रूप से वन में रह सकते हैं। लेकिन एक वर्ष बिलकुल अज्ञातवास में रहना होगा। यदि इस वर्ष में उन्हें कोई पहचान लेगा तो उन्हें बारह वर्ष और भी वनवास भोगना पड़ेगा। उस अज्ञातवास के समय अर्जुन अपना धनुष बाण इसी शमी वृक्ष पर रखकर राजा विराट के यहाँ बृहन्नला (हिजड़ा) के वेश में रहे थे। विराट के पुत्र कुमार ने गौओ की रक्षा के लिए बृहन्नला को अपने साथ लिया। शमी ने अर्जुन के शास्त्रों की रक्षा की थी और अर्जुन ने सही समय पर शस्त्र उठाकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी।''

विजय दशमी के दिन रामचन्द्र ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्थान करने के समय शमी वृक्ष ने कहा था कि आपकी विजय होगी। इसलिए उसी विजय काल में ही शमी वृक्ष की भी पूजा का महत्व है।

2. एक बार राजा युधिष्ठिर ने भी कृष्ण से विजयदशमी के बारे में पूछा तो कृष्ण ने बताया कि– ''हे राजन! विजयदशमी के दिन राजा को स्वयं अलंकृत होकर अपने दासों और हाथी, घोड़ों का श्रृंगार करना चाहिए तथा गाजे–बाजे के साथ मंगलाचरण करना चाहिए। उसे इस दिन अपने पुरोहितों को साथ लेकर पूर्व दिशा में प्रस्थान करके अपनी सीमा से बाहर जाना चाहिए और वहां शस्त्र–पूजा करके अष्टदिग्पालों तथा पार्थ देवता की वैदिक मंत्रों से पूजा करनी चाहिए। शत्रु की मूर्ति पुतला बनाकर उसकी दाती में बाण भेदना चाहिए तथा उसी समय पुरोहित से मंत्रों का उच्चारण करवाना चाहिए। ब्राह्मण की पूजा करके हाथी, घोड़ा, शस्त्र आदि का निरीक्षण करना चाहिए। यह सब क्रिया सीमान्त में करके अपने महल को वापस आना चाहिए जो राजा इस विधि से पूजन करके विजयदशमी की रस्म पूरी करता है वह सदा अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करता है।'' हिन्दू धर्म में दशहरा (विजयदशमी) के लिए उपरोक्त प्रकार की मान्यताएं और कथाएं प्रचलित और मान्य हैं। किन्तु यह उनका अपना दृष्टिकोण है। जो हमने आपकी जानकारी के लिए उल्लेखित किया है।

वास्तविकता

आइए, अब हम दशहरे पर एक तर्कशील एवं बुद्धिवादी दृष्टिकोण रखते हुए उसके वास्तविकता स्वरूप को देखने–परखने का प्रयास करें।

भारत में दशहरे को हिन्दू लोग प्रायः दो तरीको से मनाते हैं। एक राम द्वारा रावण पर जीत कराके तथा दूसरे बड़े पैमाने पर देवी (दुर्गा) का पूजन करके। एक ही त्योहार में दोनों बातों का इतने बड़े पैमाने पर साझा प्रदर्शन होना किसी के लिए भी वास्तविक सच्चाई (कारण) जानने की उत्सुकता के साथ–साथ बहुत कठिनाई पैदा कर देते है। क्योंकि हिन्दू लोग स्वयं कारण कुछ बताते हैं लेकिन काम कुछ और ही करते नजर आते हैं। इस उपलक्ष्य में दस दिन पहले से ही हर गांव, मोहल्ले, गली, चौक, बाजार में एक जगह रामलीला का प्रोग्राम तो होता ही है। लेकिन उससे भी आश्चर्य की बात यह है कि इस दशहरा की तैयारी में महीनों पहले से प्रत्येक गांव, मोहल्ले, गली, चौक, बाजार में जितना भी संभव हो सके उतनी संख्या में दुर्गा की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं । इन मूर्ति स्थलों की संख्या रामलीला स्थलों से दस गुना ज्यादा होती है। आम तौर पर देखने में यह दुर्गा माता का ही कोई महत्वपूर्ण त्योहार नजर आता है लेकिन वास्तविकता रूप में इसे लोग राम से जोड़ते हैं। इस भूल–भूलैया की स्थिति से बाहर निकलकर हम जानने का प्रयास करेंगे कि इस त्योहार के पीछे की वास्तविक सच्चाई क्या है? दशहरा को लोग विजयदशमी का नाम क्यों देते हैं? इसके पीछे का इतिहास क्या है? तथा इसका इस देश के मूलनिवासी बौद्धों से क्या सम्बंध है ?

सम्राट अशोक और विजयदशमी का इतिहास

दशहरें के सम्बन्ध वास्तव में भारत के महान चक्रवर्ती सम्राट अशोक से है। महाराजा अशोक विश्वविख्यात महान शासक थे। उनका साम्राज्य बहुत विशाल था। किसी भी राज्य विस्तार के हिसाब से उनकी महानता को मापना ठीक नहीं। उनकी महानता तो उनके मानववादी सिद्धान्तों के कारण है। इन्हीं उच्च सिद्धान्तों के आधार पर ही उन्होंने शासन किया। अपने दसवें धम्म अभिलेख में उन्होंने कहा कि ''राजा की कीर्ति का मूल्यांकन प्रजा की नैतिक उन्नति से किया जा सकता है।'' यही कारण था कि सम्राट अशोक ने युद्ध का विनाशकारी मार्ग छोड़कर बुद्ध के शांतिपूर्ण मार्ग का अनुसरण किया ।

उन्होंने अपनी प्रजा को सद्धम्म के कल्याणकारी मार्ग पर चलने का आदेश दिया और अहिंसा तथा सदाचार को अपने जीवन का आदर्श बनाया। उनका उद्देश्य था प्रजा की सर्वोपरि उन्नति। वास्तव में वह समस्त विश्व के प्राणियों का कल्याण चाहने वाले थे। जिसके लिए उन्होंने अपनी तरफ से कोई कसर नहीं छोड़ी। भारत की गौरवशाली कला और संस्कृति की शुरुआत भी सम्राट अशोक के समय से ही हुई। धम्म और बौद्ध स्तूपों की स्थापत्य कला इसके सर्वश्रेष्ठ प्रमाण हैं। उन्होंने आज से दो हजार वर्ष पूर्व भारत और पूरे विश्व को वही पाठ पढ़ाया जिसे आज संसार के सभी शांतिप्रिय देश संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से संचालित व क्रियान्वित करना चाहते हैं।

ऐसे महान सम्राट अशोक का जन्म इस पावन भारत भूमि पर अशोकावदान ग्रंथ के अनुसार लगभग 304 ईसा पूर्व चैत्र मास में शुक्ल–पक्ष की अष्टमी को हुआ था दिव्यावदान में अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी मिलता है और उनके पिता का नाम बिन्दुसार था। जो मगध देश के राजा थे। जिनकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। अशोक बचपन से कही तीव्र और कुशाग्र बुद्धि का धनी था। बड़ा होने के नाते शीघ्र ही उसने सभी शास्त्रों का ज्ञान अर्जित कर लिया था। अशोक के सौतेले भाईयों में सबसे बड़े भाई का नाम सुसीम था। इसलिए राजा का उत्तराधिकारी होने का हक उसी का था किन्तु अशोक की तीव्र बुद्धि को देखकर सभी अमात्य अशोक को ही उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में थे। इससे असमंजस में पड़े राजा को सभी राजकुमारों की परीक्षा लेकर भी सुसीम और अशोक दोनों को उत्तराधिकारी बनाना पड़ा। महाराजा बिन्दुसार ने सुसीम को उपराजा बनाकर तक्षशिला भेजा और अशोक को उज्जैन के लिए रवाना किया। उज्जैन के रास्ते में ही विदिशा नगरी पड़ती थी। अशोक ने उज्जैन जाते समय यहीं पड़ाव डाला था। यहीं पर स्कन्धमित्रा की अशोक से मुलाकात हुई और स्कन्धमित्रा को देखकर अशोक बहुत प्रभावित हुआ। अशोक ने अपने आमात्यों से कहकर उसके माता–पिता का पता लगवाया और स्कन्धमित्रा को पसन्द करने की बात कही। यह जानकर नगर सेठ ने अपनी कन्या का विवाह कुमार अशोक के साथ कर दिया। वास्तव में यह कन्या शाक्य कुल से ही थी किन्तु परिस्थितिवश उसके पूर्वज विदिशा में आकर बस गए थे। यही देवी, विदिशा महादेवी के नाम से जानी जाती है। किन्तु वर्तमान सूत्रों के अनुसार महान अशोक की रानी का नाम असंधिमित्रा बताया जाता है।

अशोक को उज्जैन के लिए रवाना किया। उज्जैन के रास्ते में ही विदिशा नगरी पड़ती थी। अशोक ने उज्जैन जाते समय यहीं पड़ाव डाला था। यहीं पर स्कन्धमित्रा की अशोक से मुलाकात हुई और स्कन्धमित्रा को देखकर अशोक बहुत प्रभावित हुआ। अशोक ने अपने आमात्यों से कहकर उसके माता–पिता का पता लगवाया और स्कन्धमित्रा को पसन्द करने की बात कही। यह जानकर नगर सेठ ने अपनी कन्या का विवाह कुमार अशोक के साथ कर दिया। वास्तव में यह कन्या शाक्य कुल से ही थी किन्तु परिस्थितिवश उसके पूर्वज विदिशा में आकर बस गए थे। यही देवी, विदिशा महादेवी के नाम से जानी जाती है। किन्तु वर्तमान सूत्रों के अनुसार महान अशोक की रानी का नाम असंधिमित्रा बताया जाता है।

अशोक असंधिमित्रा के साथ उज्जैन पहुँचे वहाँ की शासन स्थिति ठीक हुई। विवाह के एक वर्ष बाद रानी ने पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम महिंद (महेन्द्र) रखा गया । इसके दो वर्ष के बाद एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम संघमित्रा (संघमित्रा) रखा गया ।

कुछ समय पश्चात महाराज बिन्दुसार मरणासन्न अवस्था पर पड़ गए तो उस समय पाटलीपुत्र में न तो सुसीम था और न ही अशोक। महाराज बिन्दुसार की इच्छा थी की इस समय सुसीम ही उनका उत्तराधिकारी बने किन्तु उसके आमात्यों के विचारानुसार केवल अशोक ही योग्य उत्तराधिकारी हो सकता था। उन्होंने अशोक को तुरन्त उज्जैन से पाटलिपुत्र आने का संदेश भिजवाया । अशोक सन्देश पाते ही पाटलिपुत्र आ गया सुसीम को भी संदेश दिया गया था किन्तु वह अज्ञात कारणों से समय पर नहीं आ सका।

महाराजा ने जब देखा कि सुसीम का कहीं कोई अता–पता ही नहीं, केवल अशोक ही उसके पास है। राजा ने अपना अंतिम समय नजदीक आता देख अपने सिर से राजमुकुट उतारा और अशोक के सिर पर रख दिया। इस प्रकार आमात्यों के प्रयत्नों से अशोक को सम्राट का पद प्राप्त हुआ। अशोक के राजा बनते ही राजमहल मे खुशियाँ छा गई। अशोक सन् 273 ईसा पूर्व के लगभग 34 वर्ष की आयु में मगध के राज्य सिंहासन पर आसीन हुआ। जनता को अशोक की सामर्थ्य और शक्ति पर पूरा विश्वास था ।

अशोक के सम्राट बनने से राजधानी पाटलिपुत्र में उत्सव मनाया जाने लगा, किन्तु उपराजा सुसीम को जब यह समाचार मिला, तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने अपने सैनिको के साथ राजसिंहासन को बलपूर्वक हथियाने के लिए तक्षशिला से पाटलिपुत्र की ओर कूच कर दिया। कहते हैं कि अशोक ने पाटलिपुत्र के बाहर अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित सैनिकों को बिठा दिया। जैसे ही राजकुमार सुसीम ने पाटलिपुत्र की सीमा में प्रवेश किया अशोक के सैनिको ने उसे घेर कर मार गिराया। इस प्रकार अशोक के समक्ष अब कोई राज्य का दावेदार नही रहा और वह मगध के एकछत्र महाराजा बन गए ।

सम्राट अशोक के बड़े भाई उपराजा सुसीम की मृत्यु के समय उसकी रानी सुमना गर्भवती थी। उसने सोचा कि अशोक के सैनिक उसे भी मार डालेंगे इसलिए अपनी जान बचाने और गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए उसने एक चांडाल के घर जाकर शरण ली । कष्टों में जीवन निर्वाह करती हुई कुछ दिनो पश्चात् न्यग्रोध (वट=बरगद) के पेड के नीचे उसने एक पुत्र को जन्म दिया। गांव के एक मुखिया ने राजपरिवार के सदस्य होने के कारण माता–पुत्र दोनो की सात वर्ष तक अपने संरक्षण में रखकर सेवा की। न्यग्रोध वृक्ष के नीचे जन्म लेने के कारण इस बालक का नाम 'न्यग्रोध कुमार' पड़ा ।

उसके श्रामणेर होने के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उस युग में बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रचार था। अच्छे–अच्छे बौद्ध भिक्खु अपने त्यागमय जीवन और विद्वत्ता से लोगों को बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षित कर रहे थे। अतः 'न्यग्रोध' भी विद्वान बौद्ध भिक्खुओं के संपर्क में रहकर बौद्ध बन गया । श्रीलंका के महावंस नामक बौद्ध ग्रंथ में न्यग्रोध के विषय में विस्तृत वर्णन मिलता है।

साभार
त्योहारों के रहस्य
रोशन बौद्ध
(पृ.सं. 11 से 15 तक)

सेवा में,

नाम .....

पता .....

.....

.....

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें ।